ईश्वरसिद्धि

लेखक एवं प्रकाशक

धर्मपाल कपूर

बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.

कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

संस्करण : 2015
प्रतियाँ :

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

टंकण एवं संयोजन : **अभिनव इंटरप्राइजिज, मो. 94683 40497**
मुद्रक :

भूमिका

पसन्द अपनी-अपनी है ख्याल अपना-अपना ।
कोई फूल चुनकर आया कोई खार गुलिस्तां से ।।

संसार में विभिन्न प्रकार के लोग हैं । इस संसार में इतनी विभिन्नता व विषमता है कि किसी भी दो व्यक्तियों की आवाज़, चाल उंगलियों के निशान, गुण, कर्म व स्वभाव आपस में नहीं मिलते हैं । प्रत्येक व्यक्ति की हर बात निराली है । यदि दो व्यक्ति आपस में मिल जाते तो झगड़ा खड़ा हो जाता । कोई माता-पिता अपने पुत्र को, भाई-भाई को और मित्र-मित्र को न पहचान पाते । हमें पहचान के लिये आदमी नं० 1, 2, 3 आदि लगाने पड़ते । अतः श्रीराम काकभुशुण्डि को उपदेश देते हुए कहते हैं–

एक पिता के विपुल कुमारा, होहिं पृथक गुन, सील, अचारा ।
कोउ पंडित, कोउ तापस, ग्याता, कोउ धनवंत, सूर, कोउ दाता ।।

–रामचरितमानस (उत्तरकाण्ड) 86.1

एक पिता के बहुत से पुत्र पृथक्-पृथक् गुण, स्वभाव व आचार वाले होते हैं । कोई पंडित होता है, कोई तपस्वी, कोई ज्ञानी, कोई धनी, कोई शूरवीर, कोई दानी होता है ।

इसी प्रकार ईश्वर के विषय में भी विभिन्न लोगों के विभिन्न विचार हैं । वस्तुतः ईश्वर को मानने वाले बहुत हैं परन्तु जानने वाले बहुत कम हैं । जो ईश्वर के मानने वाले हैं उनमें पारस्परिक बहुत झगड़ा है । ईश्वर के नाम, काम, निवास का झगड़ा है । इस कारण लोग नास्तिक हो रहे हैं । ईश्वर को लोगों ने अंधों का हाथी मान रखा है ।

वस्तुतः ईश्वर की लीला का अनुभव हर समय हो रहा है । जरा संसार में प्रकृति के अद्भुत दृश्यों को देखिए । भाँति-भाँति के फूलों व फलों को देखिए, संसार में विभिन्न प्रकार के दृश्यों को देखिए । इसी

प्रकार विभिन्न पशु पक्षियों और उनकी आवाज़ों का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करें। विभिन्न नदियों की कल-कल करती आवाज़ें सुनिए। सौरमण्डल की अद्‌भुत व्यवस्था को देखिए। अतः इस संसार को चलाने वाली कोई शक्ति अवश्य है चाहे हम उसे किसी नाम से पुकारें। अतः ईश्वर के अस्तित्व से इन्कार नहीं किया जा सकता। अतः ईश्वर सिद्धि सिद्ध हो जाती है।

प्रस्तुतः पुस्तक के लिखने में मुझे सर्वश्री लालचंद चौहान जी, सत्यपाल मोदी जी, रोशनलाल अग्रवाल जी, नरेश बंसल जी, जयकिशन जी आदि ने सहयोग प्रदान किया है। अतः इन मित्रों का स्तवन न करना मेरी कृतध्नता होगी। विशेषतः श्री लालचंद चौहान जी ने इस पुस्तक के सम्पादन में विशेष योगदान दिया है। मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि उनके बिना प्रस्तुत पुस्तक का वर्तमान रूप में संयोजन न हो पाता। मैं उन सभी लेखकों एवं कृतिकर्ताओं का भी अत्यंत धन्यवादी हूँ जिनकी कृतियों से संदर्भ उद्‌धृत किये हैं।

जिस अचिंत्य शक्ति प्रभु की असीम अनुकम्पा से मैं अपने संकल्प को मूर्तरूप दे सका उसका भी कोटि-कोटि धन्यवाद करता हूँ। मैंने प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में पूर्ण सावधानी बरती है। परन्तु अल्पज्ञ व अपूर्ण होने के कारण फिर भी यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो पाठकों से मेरा अनुरोध है कि त्रुटि को लिख कर भेजें ताकि उसका सुधार किया जा सके। इसके लिए आपका धन्यवादी हूँगा।

धर्म पाल कपूर

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 0-9356301618

तिथि : 31-8-2015

निवेदन

वर्तमान में देखने से विदित होता है कि ईश्वर के सत्यस्वरूप, गुण, कर्म और स्वभाव से बहुत कम लोग ही परिचित हैं, अधिकतर लोग मन्दिरों में स्थापित धातु या संगमरमर की तरासी गई प्रतिमाओं को ही ईश्वर मानते हैं या उन्हें ईश्वर का अवतार मान कर पूजा करते हैं जो व्यर्थ है। क्योंकि जो चेतन तत्त्व है आत्मा और परमात्मा। अन्य पदार्थ जड़ हैं, जो न खा पी सकते हैं, न चल फिर सकते हैं अर्थात् ये चेतन नहीं हैं। चेतन का ज्ञान चेतन आत्मा को ही होता है। प्रकृति अचेतन होने से अपने समस्त परिणामों के लिये सर्वशक्ति चेतन तत्त्व ईश्वर पर आश्रित है।

समस्त जगत् का कारण जो ईश्वर जीवों के कृतकर्मों का फल देता है, तथा कार्यरूप में आने वाले समस्त तत्त्वों को परिणत करता है, जो सम्पूर्ण जगत् का अधिष्ठाता है। जगत् के उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का कारण ईश्वर है। व्यवहार रूप में ईश्वर सत्ता को इसी आधार पर जाना या पहचाना जा सकता है। इसके लिये योग साधना की आवश्यकता है। ऋषि, मुनि, योगियों ने योग साधना के द्वारा ही ईश्वर को सिद्ध किया है। योग के आठ अंग हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप है। सत्-प्रकृति, सत्चित-जीवात्मा और सच्चिदानन्द-केवल ईश्वर है। सत्-चित्-आनन्द केवल ईश्वर के पास है जिस आनन्द को प्राप्त करने की जीवात्मा की अभिलाषा होती है। जीवात्मा चेतन तत्त्व है। यह अपने कर्मानुसार देह बन्धन में आता, सुख-दुःख भोगता, जन्म-मरण के अनिश आवर्त्तमान प्रवाह में बहता रहता है। इसे क्लेश समझ कर जब उसे वैराग्य की भावना होती है, तब वह जन्म-मरण के क्लेशावह प्रवाह से बचने का संकल्प करता है। वह मार्ग है परमात्मा में आस्था। जब ईश्वरसिद्धि की अथवा ईश्वर को

साक्षात्कार करने की इच्छा जीवात्मा में जागृत हो जाती है, तब वह ईश्वर सिद्धि मार्ग की खोज व प्रयत्न में लीन हो जाता है आत्मज्ञान हो जाने पर ही ईश्वर का साक्षात्कार जीवात्मा में होता है। परमात्मा जीवात्मा में सदैव रहता है, परन्तु जीवात्मा पर पड़े काम, क्रोध, लोभ, मोह के आवरण के कारण जीव ईश्वर को नहीं जान पाता है।

आत्मज्ञान का तात्पर्य क्या है?

प्रकृति एवं प्राकृत जड़ जगत् से भिन्न ज्ञानस्वरूप आत्मा का साक्षात्कार किन्हीं दो वस्तुओं का भेद जानने के लिये आवश्यक है कि उन वस्तुओं के यथार्थस्वरूप को जाना जाये। आत्माज्ञान की आस्था की अवस्था में अनात्मा जड़ जगत् की यथार्थता का भी साक्षात्कार हो जाता है। मोक्ष प्राप्ति अथवा ईश्वरसिद्धि रूप आनन्द की प्राप्ति में सबसे बड़ी बाधा होती है—आत्मा का साक्षात्कार न होना। यह आत्मा के बन्ध की अवस्था है।

उस महान् पर ब्रह्म परमात्मा को जाने बिना ईश्वर सिद्धि कर पाना संभव नहीं है। उसे अनादि अनन्त नित्य ब्रह्म ईश्वर को जान कर मृत्युमुख से छुटकारा हो जाता है।

ईश्वर सत्यस्वरूप है, अपरिणामी है, उसमें कभी किसी प्रकार का विकार नहीं होता। वह ज्ञान अर्थात् चेतनस्वरूप है, अनन्त है, सर्वव्यापक है, कभी जन्म-मरण के बन्धन में नहीं आता, ईश्वर का कोई अवतार नहीं होता, यह सब कपोलकल्पित है, वेद में, शास्त्रों में कहीं ईश्वर के अवतार लेने की बात नहीं कही गई है।

ईश्वर, आत्मा के भेद

ईश्वर – सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, अनन्त सामर्थ्यवान, अजन्मा, सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय कर्ता है।

जीवात्मा –अल्पक्ष, अल्प अर्थात् सूक्ष्म है।

जीवात्मा और परमात्मा दोनों ही चेतनस्वरूप हैं। स्वभाव दोनों का पवित्र, अविनाशी और धार्मिकता आदि है। परन्तु परमेश्वर के सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय, सबको नियमों में रखना, जीवों

को पाप-पुण्य के फल देना आदि धर्मयुक्त कर्म हैं। जीव के सन्तानोत्पत्ति, उनका पालन, शिल्प विद्या आदि अच्छे बुरे कर्म हैं। ईश्वर के नित्यज्ञान, आनन्द, अनन्त बल आदि गुण हैं। जीव के गुण-इच्छा-पदार्थों की प्राप्ति की अभिलाषा, द्वेष-दुःखादि की अनिच्छा, वैर प्रयत्न-पुरुषार्थ, बल सुख-आनन्द, दुःख, विलाप, अप्रसन्नता ज्ञान-विवेक, पहचानना ये तुल्य है जीव और परमात्मा में।

मनुष्य का परम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना है अर्थात् ईश्वर का साक्षात्कार करना। मुक्ति क्या है? दुःखों से छूट जाना ही मुक्ति है। मुक्ति और बन्ध किन-किन बातों से होता है, ईश्वर की आज्ञा पालने, अधर्म, अविद्या, कुसंग, बुरे व्यसनों से दूर रहने, विद्या पढ़ने-पढ़ाने और धर्म से पुरुषार्थ कर ज्ञान की उन्नति करने, सबसे उत्तम साधनों को करने जो कुछ करे, वह सब पक्षपात रहित न्याय धर्मानुसार ही करें इत्यादि साधनों से मुक्ति और उसके विपरीत बन्ध होता है।

लोक में कोई ऐसा दृष्टान्त उपलब्ध नहीं होता, जहाँ जड़तत्त्व में स्वतः क्रिया का होना प्रतीत होता हो। रथ आदि जड़ पदार्थ एवं मृत शरीर में स्वतः क्रिया का होना नहीं देखा जाता। चेतन सत्ता के बग़ैर शरीर मृत हो जाता है। चेतन सत्ता को जानने की आवश्यकता है। चेतन ईश्वर की प्रेरणा के बिना जगत् के उपादान कारण परमाणुओं का स्वभावतः सम्पन्न समुदाय लोक व्यवहार को सिद्ध कर सकेगा।

समस्त शास्त्रों में यह निश्चय किया गया है कि ईश्वर एक सम्पूर्ण तत्त्व है, सर्वत्र भरा हुआ, सर्वव्यापक। कोई ऐसा प्रदेश सम्भव नहीं, जहाँ ईश्वर का अस्तित्व न हो।

ईश्वरीय व्यवस्था से कर्मों के अनुसार देह छोड़ते समय प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आगामी योनि का पता चला जाता है, उसकी उत्सुकता मृत्युकाल के कष्ट को ढीला कर देती है, वह सी का स्मरण करता हुआ देह को छोड़ कर चला जाता है। इसी मृत्यु-जन्म के चक्र से बचने के लिए ईश्वरसिद्धि का होना अति आवश्यकता है। ईश्वरसिद्धि पुस्तक के द्वारा पाठकों को ईश्वर के सत्य-स्वरूप, गुण, कर्म, स्वभाव

की जानकारी प्राप्त होगी । यह पुस्तक बड़ी ज्ञानवर्धक है । श्री धर्मपाल कपूर जी ने इस पुस्तक में ईश्वर के सत्य स्वरूप पर प्रकाश डाला है । पाठकगण ईश्वर के विषय में जान कर पाखण्ड से बच सकेंगे । यह श्री धर्मपाल कपूर जी का अथक परिश्रम एवं पुरुषार्थ का कार्य है । श्री धर्मपाल जी इससे पूर्व अनेक पुस्तकों का प्रकाशन करा कर निःशुल्क वितरण कर चुके हैं । अनेक पुस्तकें प्रकाशन के लिये तैयार की जा रही हैं, उनका शीघ्र प्रकाशन होने की सम्भावना है । ईश्वर से प्रार्थना है कि ईश्वर इन्हें लम्बी आयु प्रदान करे ताकि वह वैदिक ग्रंथों के निष्कर्ष को अपनी पुस्तकों के माध्यम से जनता तक पहुँचाते रहें ।

लालचंद चौहान
से.नि., राज्य विकास अधिकारी,
कोठी नं. 591/12, पंचकूला ।
फोन - 0172-2563079
मो. 9814881501

विशेष सूचना

1. स्वाध्याय, मनन और आत्मसात् ।
2. पाठकगण पुस्तक पढ़ने के पश्चात् किसी भी स्वाध्यायशील मित्र को इसे देने की कृपा करें ।
3. कोई भी जिज्ञासु अपनी इच्छानुसार इसकी प्रतियाँ फोटोस्टेट करवा कर स्वाध्यायशील मित्रों में प्रचार-प्रसार के लिये बाँट सकता है ।
4. पुस्तक केवल प्रचारार्थ लिखी गई है और इसका मूल्य सदुपयोग है ।
5. सर्वाधिकार लेखकाधीन ।

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

विषयसूची

क्र.सं.		विषय	पृष्ठ
I.	ईश्वर सिद्धि		1
	(1)	ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप है	5
	(2)	ईश्वर निराकार स्वरूप है	14
	(3)	ईश्वर सर्वशक्तिमान है	26
	(4)	ईश्वर न्यायकारी है	29
	(5)	ईश्वर दयालु है	29
	(6)	ईश्वर अजन्मा है	32
	(7)	ईश्वर अनन्त है	33
	(8)	ईश्वर निर्विकार है	33
	(9)	ईश्वर अनादि है	34
	(10)	ईश्वर अनुपम है	35
	(11)	ईश्वर सर्वाधार है	35
	(12)	ईश्वर सर्वेश्वर है	37
	(13)	ईश्वर सर्वव्यापक है	39
II.	ईश्वर और बाइबल		62
III.	ईश्वर और क़ुरान		62
IV.	ईश्वर और श्रीगुरुग्रंथसाहिब		63

I. ईश्वरसिद्धि

क्या बताऊँ कि मुझे क्या-क्या नज़र आता है ।
ज़र्रे ज़र्रे में तेरा जलवा नज़र आता है ।
खिलीं जो कलियां नज़र आया तेरा मुस्कराना ।
गुलों में मुझको तेरा हँसना नज़र आता है ।
उषा की सुरख़ी में सुरख़ी तेरे रुखसारों की ।
हर एक अदा में तू इठलाता नजर आता है ।

1. ईश्वर वेद, उपनिषद् आदि–

ओ३म् ईशा वास्यामिदꣳसर्वयत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा, मा गृधः कस्यस्विद् धनम् ।।

–यजुर्वेद 40.1, ईशावस्योपनिषद्

इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी दिखाई दे रहा है सभी कुछ ईश्वर से व्याप्त है । ईश्वर इस संसार के कण-कण में व्याप्त है । अतः प्रभुप्रदत्त प्रत्येक वस्तु का त्यागपूर्ण भोग करो और लालच मत करो क्योंकि यह धन किसी का भी नहीं है । एक अंग्रेज़ी कवि ने कितना सुन्दर लिखा है–

No one Can know thou,
No One Can define thou,
No One Can see thou,
But only true devotee can feel thou.

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि ऐसे सर्वव्यापक परमात्मा की कैसे अनुभूति की जाए । ऐसा करने के लिए मुख्य उपाय निम्नलिखित हैं:–

1.	निष्कपटता	–	(Sincerity)
2.	शुद्धता	–	(Purity)
3.	विवेक	–	(Discrimination)
4.	वैराग्य	–	(Dispassion)

5. आध्यात्मिक चिन्तन – (Spiritual Thinking)
6. धैर्य – (Preseverance)
7. आत्मसंयम – (Self Confidence)
8. निष्काम सेवा – (Selfless Service)
9. सम्पूर्ण समर्पण – (Complete Surrender)

तभी तो जयदयाल गोयन्दा जी लिखते हैं –

परन्तु भगवान् का स्वरूप कोई भी बता नहीं सकता; क्योंकि यह वाणी का विषय नहीं है। यह जब प्राप्त होगा, तभी मालूम होगा जिसको प्राप्त होगा वह ही उसे समझ सकेगा।

–ज्ञानयोग का तत्त्व (भगवान् क्या है पृ० 162)

परमात्मा सर्वव्यापक है। इसके विषय में अकबर सम्राट् की एक बात सुनाता हूँ। बीरबल अकबर के नवरत्नों में से एक थे। एक बार अकबर ने उनसे पूछा–

1. प्रभु कहाँ रहते हैं? 2. किधर देखते हैं? 3. क्या करते हैं?

इस पर बीरबल ने उत्तर दिया कि एक सप्ताह के उपरांत आप के तीनों प्रश्नों का उत्तर दे दिया जाएगा। इस प्रकार 6 दिन व्यतीत हो और बीरबल को कोई भी उत्तर नहीं सूझा। सातवें दिन जब वे चिंता में डूबे बैठे थे तभी उनके छोटे पुत्र ने आकर पूछा–''पिता जी! आप चिंता में क्यों है?

बीरबल ने उत्तर दिया ''बादशाह ने यह तीन प्रश्न पूछे हैं, परन्तु मुझे उनका उत्तर नहीं मिलता'' इस प्रकार उनके पुत्र ने उत्तर दिया कि इन प्रश्नों का उत्तर मैं आपको न देकर स्वयं बादशाह को ही दूंगा। मुझे उनके पास ले चलो।

बीरबल उसको लेकर अकबर सम्राट् के पास पहुँच गया। उसने बादशाह से कहा कि आपके तीनों प्रश्नों का उत्तर मेरा पुत्र देगा। बादशाह ने बालक की ओर आश्चर्यचकित होकर देखा और मन ही

मन विचार किया कि यह छोटा सा बालक इतने कठिन प्रश्नों का उत्तर कैसे दे सकता है? इसके उपरांत बालक से एक-एक प्रश्न का उत्तर देने को कहा–

बालक ने उत्तर दिया ''अकबर सम्राट् आप भारतीय संस्कृति से अनभिज्ञ हो। इसके अनुसार जब कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति से मिलने जाता है तो पहले उसको खिला पिलाकर आदर सत्कार किया जाता है। इसके उपरांत ही प्रश्न पूछा जाता है।

सम्राट् ने शर्म से कहा–''अच्छा बोलो आप क्या खाओगे?''

बालक ने कहा– ''मै तो छोटा सा बालक हूँ मुझे दूध ही भाता है।''

बादशाह ने कटोरे में दूध मंगवाया। दूध आ गया। सम्राट् अकबर ने बालक को देखकर कहा ''पियो बच्चे।'' बालक ने कटोरे को लेकर उसमें झांका, उसके चारों ओर देखा, फिर उंगली डालकर उसमें कोई वस्तु ढूंढने लगा।

बादशाह ने कहा– क्या करते हो बालक? आप दूध क्यों नहीं पीते?

बालक ने उत्तर दिया – दूध में मक्खन होता है लेकिन इसमें तो मुझे कहीं भी वह दिखाई नहीं देता।

बादशाह ने हँसकर कहा– आप अभी नादान बालक हो, अरे, मक्खन इसके अन्दर अवश्य है। उसे देखना है तो दूध में दही डालकर जमाना पड़ता है। इसके बाद उसे मथनी डालकर मथना पड़ता है तभी कुछ देर बाद मक्खन ऊपर आ जाता है।

बालक ने उत्तर दिया– बादशाह सुनो आप के प्रथम दो प्रश्नों का उत्तर यही है कि प्रभु कण-कण में है परन्तु उनके दर्शन तब होते हैं जब मन को ओम् के जाप की दही डालकर जमाया जाता है। फिर धारणा, ध्यान एवं समाधि की मथनी से मथा जाता है। तभी जाकर

प्रभु से साक्षात्कार होता है ।

इसके उपरांत बादशाह ने कहा – आपने मेरे दो प्रश्नों का उत्तर दे दिया । अब बताओ कि प्रभु करते क्या हैं ?

बालक ने उत्तर दिया – आप अपना तीसरा प्रश्न मुझसे गुरु बनकर पूछते हो या शिष्य बनकर ।

बादशाह ने उत्तर दिया– ''गुरु बनकर कोई नहीं पूछता, मैं शिष्य बनकर पूछता हूँ ।''

बालक ने उत्तर दिया– ''आप अद्‌भुत शिष्य हो, गुरु जी नीचे पृथ्वी पर खड़े हैं और शिष्य तख्त पर विराजमान है ।''

बादशाह को अत्यंत लज्जा आई और वह तख्त से नीचे आया और बालक को ऊपर बैठा दिया इसके बाद हाथ जोड़कर कहा अब बताओ प्रभु क्या करते हैं ?

बालक ने हँसकर कहा– यह मेरे तीसरे प्रश्न का उत्तर हो गया । प्रभु क्षण भर में हीरो से जीरो और जीरो से हीरो बना देते हैं ।

ईश्वर के अस्तित्व की प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्धि होती है जिसके पश्चात् यह प्रश्न होता है कि ईश्वर का स्वरूप कैसा है? वास्तव में ईश्वर के स्वरूप का निर्धारण करना एक प्रमुख दार्शनिक समस्या है । भारतीय और पश्चिमी दोनों ही दार्शनिक पद्धतियों में ईश्वर के विषय में पर्याप्त विचार-विमर्श किया है तथा ईश्वर को जगत् की सर्वोच्च सत्ता के रूप में स्वीकार किया है । किन्तु स्वामी दयानन्द ने जिस रूप में ईश्वर के स्वरूप का निरूपण किया है वह पूर्णतः वेद पर आधारित है और ईश्वर के स्वरूप के संबंध में वास्तव में वेद की मान्यता ही सर्वोपरि है । इसका मुख्य कारण यह है कि एक तो वेद स्वयं ईश्वर का ही ज्ञान है और अपने स्वरूप के विषय में स्वयं वही यथार्थ वर्णन कर सकता है तथा दूसरे वेद को वेदमाता कहा जाता है । वेद को माता कहने से ही विदित होता है कि ईश्वर के विषय में वही

यथार्थ ज्ञान दे सकता है अन्य नहीं, यथा—लोक में किसी व्यक्ति का वास्तविक पिता कौन और कैसा है, यह ज्ञान यथार्थ रूप में उस व्यक्ति की माता ही दे सकती है अन्य नहीं और जब तक माता यह नहीं बताती कि यह तुम्हारे पिता है तब तक हम किसी भी व्यक्ति को अपना पिता नहीं मानते। ठीक इसी प्रकार वेद सब मनुष्यों की माता है अतः वही परमपिता परमात्मा के विषय में यथार्थ ज्ञान दे सकती है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेद का अवगाहन करके ईश्वर के स्वरूप का वर्णन आर्य समाज के दूसरे नियम में किया है, जो निम्न प्रकार है—

ईश्वर सच्चिदानंद स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, और सृष्टिकर्त्ता है।

ईश्वर के इस स्वरूप का प्रतिपादन वेदमंत्रों के आधार पर किया गया है, अतः इस कथन की पुष्टि के लिए वेदमंत्रों का मन्थन आवश्यक हो जाता है। वैसे तो प्रत्येक वेदमंत्र से ईश्वर के विशिष्ट गुणों की स्तुति ही ध्वनित होती है किन्तु कुछ वेदमंत्र सीधे रूप में विशेष रूप से ईश्वर के स्वरूप का निरूपण करते हैं। हम उन्हीं वेद मंत्रों का विवेचन करना उपयोगी समझकर, उनका अवगाहन करते हैं—

(1) ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप है

वेद में वर्णित ईश्वर के सच्चिदानन्द स्वरूप को समझने के लिए सर्वप्रथम सत्, चित् और आनन्द इन तीनों गुणों का मौलिक लक्षण जानना आवश्यक है। स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश नामक ग्रंथ में इन तीनों का लक्षण निम्न प्रकार निरुपित किया है—

सत् स्वरूप – तीनों कालों में जिसको बाधा न हो, सदा वर्तमान रहे, उस परमेश्वर को सत् कहते हैं। ईश्वर के सत्स्वरूप का वर्णन

करते हुए यजुर्वेद में कहा है–

वेनः सत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् ।

तस्मिन्नसंञ्य वि चेति सर्वं सओतः प्रोतश्य विभूः ।। –32.8

हे मनुष्यो ! विद्वान ही जिसको बुद्धि बल से जानता जो सब आकाशादि पदार्थों का आधार प्रलय समय सब जगत् जिसमें लीन होता और उत्पत्ति समय में जिससे निकलता है और जिस व्याप्त ईश्वर के बिना कुछ भी वस्तु खाली नहीं है उसको छोड़ किसी अन्य को उपास्य ईश्वर मत जानो ।

'मेधावी पुरुष परमेश्वर को हृदय गुहा में साक्षात् करता है ।' इसी प्रकार ऋग्वेद में कहा है कि – **परि प्रजातः कृत्वा, बभूव, भुवो देवानां पिता पुत्र सन्** । वह सत् स्वरूप विद्वानों, सूर्यादि का उत्पादक, पालक तथा पवित्र कर्ता है । इसी बात को ऋग्वेद का ही अन्य मन्त्र इस प्रकार कहता है – **एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति** 'एक सत् स्वरूप ईश्वर विद्वानों द्वारा अनेक रूपों में वर्णित किया जाता है । यहाँ एक बात यह स्पष्ट कर देना भी अभीष्ट होगा कि वेद में ईश्वर को सत्स्वरूप स्वीकार करने का यह अभिप्राय बिल्कुल नहीं है कि उससे इतर अन्य किसी पदार्थ की सत्ता सत् नहीं है क्योंकि वेद स्पष्टतः जीव और प्रकृति को भी सत् स्वरूप मानता है । ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप है । सत् प्रकृति, सत्-चित् जीवात्मा और सत्-चित्-आनन्द स्वरूप परमात्मा है । प्रकृति जड़ होने से तथा जीवात्मा अल्पज्ञ, अल्पशक्ति होने से जगत् रचना में असमर्थ है, इसलिए ईश्वर अनन्त सामर्थ्यवान होने से सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय कर्ता है, अन्य किसी में यह सामर्थ्य नहीं है । इस प्रसंग में यहाँ केवल इतना ही सामर्थ्य है कि ईश्वर के सत्स्वरूप का वेद में वर्णन किया गया है जिसको की सारे वेदज्ञों ने स्वीकार किया है ।

चित्स्वरूप – स्वामी दयानन्द ने ईश्वर के चित् स्वरूप के विषय में लिखा है '' जो सब जीवों को चिताने वाला और सत्यासत्य को

जानने हारा है इससे वह परमात्मा चित है ।'' स्वामी दयानन्द द्वारा उल्लिखित आशय को अथर्ववेद में इस प्रकार कहा है कि –

ईजान चित् मारूक्षदाग्नि नाकस्य पृष्ठादऽदिमुत्पत्तिप्वन ।18.4.14

यज्ञ करने वाला चेतन स्वरूप परमात्मा को प्राप्त होता है ।

आनन्दस्वरूप – वेद में ईश्वर को आनन्दस्वरूप स्वीकार किया गया है । स्वामी दयानन्द के अनुसार आनन्दस्वरूप का अभिप्राय है –

जिसमें सब मुक्त जीव आनन्द को प्राप्त होते हैं और जो सब धर्मात्मा जीवों को आनन्दयुक्त करता है, इससे वह ईश्वर आनन्दस्वरूप है ।

हालांकि ईश्वर के सच्चिदानन्द स्वरूप को शंकराचार्यादि अनेक विद्वानों ने भी निरूपित किया है किन्तु उन्होंने ब्रह्म के इस स्वरूप के साथ-साथ ब्रह्म के पर और अपर दो भेद कर दिए हैं । जिससे उनके और स्वामी दयानन्द के आशय में भिन्नता उपस्थित हो गई है । इस विषय में विस्तार से आगे विचार किया जायेगा परन्तु यहाँ इतना अवश्य ध्यान देने योग्य है कि वेद में ईश्वर के संबंध में पर और अपर जैसा कोई भेद नहीं किया गया है । इस विषय में वेद में कुछ ऐसे मंत्र भी हैं जिनमें ईश्वर के सत्, चित् और आनन्द इन तीनों गुणों का एक साथ वर्णन किया है, जैसे यजुर्वेद में कहा गया है –

कस्त्वा सत्यो मदानां मꣳहिष्ठो मत्सदनधसः दृढा चिदारूजे वसु ।

–27.40, 36.5

हे मनुष्यो ! जो अन्नादि और सत्य के जताने से धनादि सारे पदार्थ दे के सब को आनन्दित करता है, उस सुखस्वरूप परमात्मा की ही तुम लोग नित्य उपासना किया करो । अथर्ववेद में कहा है कि ''ईश्वर के सानिध्य में विद्वान् मोक्ष का उपभोग करते हुए समान स्थान में पहुँचते हैं ।'' इसी प्रकार ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में ईश्वर को सुख स्वरूप बताते हुए उसकी स्तुति करने के लिए कहा है–''कस्मै देवाय हविषा विधेम ।'' उस सुखस्वरूप परमात्मा की हम उपासना करें । इस

मंत्र भाग में आये कस्मै (क) 'किस' अर्थात् प्रश्न सूचक अर्थ करते हुए मैक्समूलरादि विद्वानों ने यह दर्शाने का प्रयास किया है कि वैदिक ऋषि इतने अज्ञानी थे कि उनको यह भी ज्ञान न था कि हम 'किस' देवता की पूजा करें। उनका इस विषय में यह मत है कि इन मंत्रों में केवल जिज्ञासा (भक्त की ईश्वर के प्रति) को प्रकट किया गया है मैक्समूलर ने अपने द्वारा सम्पादित पुस्तक Vedic Hymns में लिखा है– "To which God shall we offer our worship. किन्तु जब उन मंत्रों के शेष भाग पर विचार करते हैं जिनसे यह 'कस्मै' शब्द प्रयुक्त हुआ है तब यह धारणा निर्मूल सिद्ध होती है क्योंकि उन मंत्रों में ईश्वर के गुणों का निश्चयात्मक वर्णन है, जैसे–

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

यजु० 25.13

उक्त मंत्र में ईश्वर के गुणों का वर्णन करते हुए कहा है कि उस आत्मादि के बल को देने हारे, सब लोगों द्वारा उपास्य तथा जिसका आश्रय अमृत है और जिसका न मानना ही मृत्यु है। ऐसा कहकर फिर यह कहना कि 'किस देव की पूजा करें? अनर्थक है अतः यहाँ यही अर्थ उचित है कि 'उस सुख स्वरूप ईश्वर की सदैव उपासना करें। स्वामी दयानन्द ने अपनी पुस्तक आर्याभिविनय में इस मंत्र का अर्थ इस प्रकार किया है कि 'जो आत्मा का दाता (मन और देह का दाता) और (शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक) बल का दाता है, सब लोग जिसकी उपासना करते हैं, विद्वान् लोग जिसके उत्तम शासन को मानते हैं, जिसका आश्रय अमृत है और जिसका न मानना मृत्यु है, सुख स्वरूप उस दिव्य गुणों के दाता की पूरे सामर्थ्य से हम उपासना करें।'' स्वामी दयानन्द द्वारा इन मंत्रों में आये 'क' शब्द का सुख स्वरूप अर्थ करना पूर्णतः प्राचीन ऋषि परम्परा के अनुकूल है क्योंकि शतपथ

ब्राह्मण में 'क' शब्द को ईश्वरार्थ रूप में प्रयुक्त किया गया है, शतपथ ब्राह्मण में कहा है–

को हि प्रजापति, प्रजापतिर्वै कः ।

अर्थात् 'क' के अर्थ प्रजापति (ईश्वर) है । अतः यह स्पष्ट है कि ऋग्वेद के मंत्रों में आये 'कस्मै' शब्द का अर्थ 'किस देवता' नहीं अपितु 'उस सुख स्वरूप' का ही है । अतः इन वेद मंत्रों में ईश्वर के आनन्दस्वरूप का वर्णन है ।

ईश्वर के सच्चिदानन्द स्वरूप हेतु युक्ति

ईश्वर को सच्चिदानन्द स्वरूप मात्र कह देने से यह स्पष्ट नहीं होता कि ईश्वर को सत्, चित्, आनन्द क्यों कहा जाता है? क्योंकि सामान्य जन यही समझते है कि वास्तव में सत्ता, चेतना और सुख अथवा आनन्द तो सांसारिक वस्तुओं में भी है तब इन गुणों का आश्रय ईश्वर को क्यों माना जाये? अतः इस विषय को यहाँ स्पष्ट कर देना प्रासंगिक होगा–

1. सत्ता आत्मगत होती है– बहुधा यह धारणा प्रचलित है कि सत्ता वस्तुओं में निहित है अर्थात् बाह्य वस्तुयें हैं अथवा उनकी सत्ता है इसीलिए उनका ज्ञान होता है । इस विषय में यह विचारणीय है कि वास्तव में बाह्य सांसारिक वस्तुओं की सत्ता तो है किन्तु उस सत्ता का ज्ञान स्वयं वस्तुओं पर ही निर्भर नहीं करता अपितु आत्मा पर निर्भर करता है । जैसे – रूप का अस्तित्व हम इसलिए मानते हैं क्योंकि रूप को आँख देख सकती है, शब्द का अस्तित्व उसके सुने जाने पर निर्भर करता है । इसी प्रकार समस्त वस्तुओं में रूप, रस, गंध, परिमाण, पृथकत्व, स्नेहत्व आदि सभी जो गुण है उनका अनुभवकर्ता आत्मा है और जिनको आत्मा नहीं जानता उनकी सत्ता का भी ज्ञान नहीं हो सकता । इस प्रकार एक दृष्टिकोण से यह कहना कि वस्तुओं की सत्ता है इसका तात्पर्य यह होता है कि हमारी आत्मा उनको जानती है ।

अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह कैसे माना जाये कि वस्तुओं की सत्ता है इसका तात्पर्य यह होता है कि हमारी आत्मा उनको जानती है । अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह कैसे माना जाये कि वस्तुओं की सत्ता अस्तित्व हमारे जानने पर निर्भर करता है जैसे– जन्मान्ध व्यक्ति को रूप की सत्ता का, जन्म से बहरे को शब्द की सत्ता का कभी ज्ञान नहीं होता । अतः उनके लिए इनका कोई औचित्य नहीं होता । किन्तु इस विषय में एक अन्य प्रश्न यह उभरता है कि तब फिर यदि किसी व्यक्ति को रूप का या शब्द का ज्ञान नहीं होता तब क्या उनके अस्तित्व को ही न माना जाना चाहिए? इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर है कि वस्तुओं की सत्ता में दो प्रकार के धर्म विद्यमान होते हैं– एक सामान्य और दूसरा विशेष । सामान्य लक्षण भी आत्मगत होते हैं और विशेष भी किन्तु सामान्य लक्षण जीवात्मा पर निर्भर न होकर परमात्मा पर निर्भर होते हैं और परमात्मा प्रत्येक जीवात्मा में भी विद्यमान है ।

अतः सामान्य लक्षणों की आत्मगतता परमात्मा की चेतना पर निर्भर करती है जबकि विशेष लक्षणों की आत्मगतता जीवात्मा पर निर्भर होती है । इस प्रकार रूप, रस, गंध आदि सामान्य लक्षण जीवात्मा पर निर्भर न होकर परमात्मा पर निर्भर है इसलिए किसी व्यक्ति विशेष के अंधा या बहरा होने से उसका सत्ता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । इसी बात को स्वामी दयानंद ने आर्यसमाज के प्रथम नियम में इस प्रकार कहा है – 'सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है ।' इसका यही तात्पर्य है कि सब सत्य विद्यायें और उन सत्य विद्याओं द्वारा जाने-जाने वाले पदार्थ ईश्वर पर निर्भर हैं । किन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि बाह्य सांसारिक वस्तुओं की सत्ता ही नहीं है क्योंकि यदि उनकी सत्ता ही न होती तब आत्मा और परमात्मा के ज्ञान पर निर्भर ही कौन होता? अतः क्योंकि वे हैं इसीलिए परमात्मा की शक्ति द्वारा संचालित एवं

उसी पर निर्भर है । दूसरे शब्दों में ईश्वर पर निर्भर होना ही बाह्य संसार की वस्तुओं की सत्ता का प्रमाण है । संक्षेप में संसार में जिस भी पदार्थ की सत्ता है वह ईश्वर की सत्ता के कारण ही अस्तित्ववान् है इसीलिए ईश्वर परम सत् है ।

2. चेतना भी आत्मगत गुण है– इसके अतिरिक्त ईश्वर को चेतन स्वरूप भी कहा गया है जबकि जीवात्मा को भी चेतनस्वरूप कहा जाता है । तब इन दोनों की चेतना में क्या अन्तर है और जीवात्मा के चेतन स्वरूप को परमात्मा के लिए भी प्रयुक्त किया जाना कहाँ तक उचित है । इस विषय में विचार करना भी आवश्यक हो जाता है । चेतना से अभिप्राय ज्ञान को ग्रहण करने की सामर्थ्य से है अर्थात् वह शक्ति जिसके द्वारा स्वयं अपने और अन्य के अस्तित्व का भान होता है, चेतना कहलाती है । अब एक शक्ति तो इस शरीर के अन्दर ऐसी विद्यमान है जिसको जीवात्मा कहा जाता है, वह शक्ति सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, ज्ञान और प्रयत्न इन छः लक्षणों से युक्त है अर्थात् उनकी चेतना इन छः रूपों में प्रस्फुटित होती है और ये छः लक्षण प्रकृति के संसर्ग में आकर उसका उपभोग करने से प्रादुर्भूत होते हैं ।

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि वास्तव में इन छः लक्षणों का मूल कारण क्या है? जब हम किसी वस्तु की इच्छा करते हैं तब यदि वह वस्तु हमें मिल जाती है तब उसकी प्राप्ति के परिणामस्वरूप दो प्रकार की अनुभूतियों का जन्म होता है एक सन्तुष्टि का तथा दूसरा उसके परिणाम से उद्भूत सुख अथवा दुःख का । यहाँ स्वभावतः यह प्रश्न अवश्य उभरेगा कि इच्छित वस्तु की प्राप्ति से तो सुख ही उत्पन्न होता है तब वहाँ दुःख को भी क्यों कहा गया? वास्तव में इच्छित वस्तु की प्राप्ति से सुख अथवा दुःख नहीं होता अपितु यह तो प्राप्त हुई वस्तु की प्रकृति पर निर्भर करता है और इच्छित वस्तु की प्राप्ति पर केवल व्यक्ति की इच्छा चटपटी वस्तु खाने की होती है अब यदि उसको चाट

आदि कोई ऐसी चटपटी वस्तु खाने को दे दी जाये तो वह शांत अवश्य हो जायेगा किन्तु इस इच्छा पूर्ति से प्राप्त वस्तु के परिणाम से वह सुखी नहीं होगा अपितु दुःखी होगा। क्योंकि ज्वर में ऐसी वस्तुयें विकृति उत्पन्न करती हैं।

इसी प्रकार शराबी व्यक्तियों को शराब और कामी व्यक्तियों को स्त्री-गमन की प्रबल इच्छा होती है। इन इच्छाओं की पूर्ति से क्षणिक सन्तुष्टि तो अवश्य मिल जायेगी किन्तु इनसे सुख नहीं मिलेगा। अतः यह समझना चाहिए कि सांसारिक भोग की इच्छा जीवात्मा को होती है किन्तु उस इच्छा की पूर्ति के साधन एवं भोग्य वस्तु की प्रकृति के आधार पर ही उसमें सुख अथवा दुःख आविर्भूत होते है। अब जिस वस्तु से सुख उत्पन्न होता है उसे बार-बार प्राप्त करने की इच्छा होती है और जिससे आत्मा को दुःख मिलता है उसके प्रति द्वेष उत्पन्न होता है। इस प्रकार ये छः लक्षण जीवात्मा सापेक्ष हैं किन्तु इनके अविर्भाव के साधन निरपेक्ष है। इससे यह स्पष्ट है कि सृष्टि के प्रत्येक भोग्य पदार्थ की अनुभूति को उत्पन्न करने वाला सामर्थ्य ईश्वर के पास ही है जो जीवात्मा में ओत-प्रोत हुआ उसको चिताता और सत्यासत्य का जनाने वाला है इससे ईश्वर को चेतनस्वरूप कहा जाता है। अतः यहाँ पर समझना चाहिए कि ईश्वर की चेतना असीम है जबकि जीव की चेतना ससीम है।

3. आनन्द गुण का आधार ईश्वर – ईश्वर का सच्चिदानन्द स्वरूप कहने में सबसे अधिक जटिल समस्या ईश्वर को आनन्दस्वरूप स्वीकार करने में आती है क्योंकि बहुधा सामान्य बुद्धि के व्यक्ति यह कहते सुने जाते हैं कि जब तक जियो सुख से जियो।' अर्थात् सांसारिक भोग करते हुए सुख प्राप्त करो। इससे यह आशय स्पष्ट होता है कि सुख वास्तव में सांसारिक पदार्थों के भोग में ही है। किन्तु इस विषय में विचार करने पर यह विदित होता है कि वास्तव में सुख

और दुःख वस्तु के भोग में निहित नहीं होते अर्थात् सुख की वस्तुगत सत्ता नहीं है अपितु आत्मगत सत्ता है। क्योंकि यदि सुख वस्तुओं के भोग में होता तब तो एक वस्तु के उपभोग से सबको सुख ही मिलना चाहिए था। किन्तु ऐसा नहीं है हम अपने दैनिक जीवन में भी यह देखते हैं कि एक वस्तु एक व्यक्ति के लिए सुखदायी होता है जबकि वही वस्तु दूसरे व्यक्ति के लिए दुःखदायी होती है।

यदि कहीं कोई सुन्दर वाद्ययंत्र बज रहा है तब उस वाद्ययंत्र की ध्वनि से एक व्यक्ति सुख का अनुभव कर रहा है जबकि दूसरा व्यक्ति जो बीमार है उसे उसी वाद्ययंत्र की धुन से कष्ट का अनुभव हो रहा है। इसी प्रकार एक शादी के मंडप में हुई सजावट को देखकर एक व्यक्ति सुख का अनुभव करता है जबकि दूसरा व्यक्ति जिसका जवान बेटा अविवाहित ही मृत्यु को प्राप्त हो गया है वह उसकी सजावट को देख कर दुःखी हो रहा है। अतः स्पष्ट है कि सुख वास्तव में वस्तुओं के भोग में न होकर आत्मा में होता है। अब यह विचार करना आवश्यक है कि सुख जीवात्मा में है अथवा परमात्मा में? इस विषय में यह विचार करना चाहिए कि यदि सुख जीवात्मा का स्वाभाविक गुण होता है तब तो वह सदैव सुखी रहता और सुख के अतिरिक्त कभी भी दुःखी न होता किन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि प्रत्येक जीवात्मा सुख प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है और उस सुख के अतिरिक्त दुःख का भी अनुभव होता है।

अतः सुख जीवात्मा का नैमित्तिक लक्षण है और इस नैमित्तिक गुण का नैमित्तिक कारण ईश्वर है। क्योंकि नैमित्तिक कारण उसको कहते हैं ''जिसके बनाने से कुछ बने न बनाने से न बने, जो आप स्वयं बने नहीं अपितु दूसरे को प्रकारान्तर बना देवे।'' जीवात्मा को होने वाली सुखानुभूति का मूल आश्रय ईश्वर का सुख स्वरूप ही है। इसमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जो-जो प्राणी जितने-जितने अंश में

ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल सृष्टि के पदार्थों का भोग करते हैं उनको उतना-उतना ही सुख मिलता है और जहाँ-जहाँ उसकी आज्ञा के विरुद्ध उपभोग किया जाता है वहीं-वहीं दुःख होता है। अतः ईश्वर की आज्ञा पालन को सत्याचरण कहते हैं और ईश्वर की आज्ञा वेद है अतः वेद ही धर्म का मूल कहा गया है इस प्रकार स्पष्ट है कि ईश्वर ही आनन्दस्वरूप है उससे अन्य जीवात्मादि आनन्दस्वरूप युक्त नहीं है। अतः स्वामी दयानन्द का ईश्वर को सच्चिदानन्द स्वरूप कहना पूर्णतः वेदानुकूल तथा युक्तियुक्त है।

(2) ईश्वर निराकार स्वरूप है

वेद में ईश्वर को निराकार कहा गया है। यहाँ यह विशेष विवेचन का विषय है कि ईश्वर को साकार मानने वालों ने ईश्वर की प्रतिमा एवं मनुष्य के रूप में अवतरित होने की कल्पना की है किन्तु वेद में इस मत का सर्वथा विरोध है जैसा कि यजुर्वेद में स्पष्ट कहा है कि **'न तस्य प्रतिमाऽस्ति यस्य नाम महद्यशः'** 32.2 ''परमेश्वर की प्रतिमा, परिमाण, उसके तुल्य अवधि का साधन, प्रतिकृति, आकृति व मूर्ति नहीं है।'' इसी प्रकार ऋग्वेद में कहा है– **अपादशीर्ष गुह्यमानो अन्तायोयुवानो वृषमस्य नीडे।** अर्थात् ईश्वर पाँव, सिरादि, शारीरिक अवयवों से रहित हैं। अवतारवाद का प्रबल रूप से निषेध करते हुए यजुर्वेद में कहा है–

स पर्यगच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।। 40.8

हे मनुष्यो ! जो अनन्त शक्तियुक्त अजन्मा निरन्तर सदा मुक्त न्यायकारी निर्मल, सर्वज्ञ सब का साक्षी नियन्ता अनादिस्वरूप ब्रह्मकल्प के आरम्भ में जीवों को अपने कहे वेदों से शब्द, अर्थ और उनके संबंध को जानने वाली विद्या का उपदेश न करे तो कोई विद्वान् न होवे और न धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के फलों के भोगने को समर्थ हो । इसलिये इसी ब्रह्म की सदैव उपासना करें ।

इसके विपरीत वेद में कहीं पर भी ईश्वर के साकार रूप का उल्लेख नहीं किया गया है । अतः ईश्वर का निराकार रूप ही वेद द्वारा अनुमोदित है जो कि तर्क एवं साक्ष्य दोनों के आधार पर उपयुक्त है । स्वामी दयानन्द की यह एक विशिष्ट देन है कि उन्होंने वेदों के आधार पर ब्रह्म के विषय में वेद और दार्शनिकों के मध्य कृत्रिम विरोध को समाप्त कर दिया ।

ईश्वर के निराकार स्वरूप के विषय में युक्तियाँ

यह प्रश्न कि ईश्वर साकार है अथवा निराकार है? दार्शनिक महत्व के साथ-साथ जन सामान्य के लिए भी उपयोगी है क्योंकि जन सामान्य में फैली अनेक मिथ्या धारणाओं का आधार ईश्वर को साकार मानना ही है । यथा अवतारवाद, मूर्तिपूजा, जड़ पूजा आदि धारणाओं का आधार ईश्वर के साकार रूप की परिकल्पना ही है । अतः इन विषय का विवेचन करना अपना विशेष महत्व रखता है । यहाँ सर्वप्रथम इस प्रश्न के उत्तर में स्वामी दयानन्द का कथन दृष्टव्य है–

प्रश्न 1. : ईश्वर साकार है या निराकार?

उत्तर – ''निराकार, क्योंकि जो साकार होता तो व्यापक नहीं हो सकता । जब व्यापक नहीं होता तो सर्वज्ञादि गुण भी ईश्वर में न घट सकते क्योंकि परिमित वस्तु में गुण, कर्म, स्वभाव भी परिमित रहते हैं तथा शीतोष्ण, क्षुधा, तृष्णा और रोग, दोष, छेदन, भेदन आदि से रहित नहीं हो सकता । इससे यही निश्चित् है कि ईश्वर निराकार है ।

जो साकार हो तो उसके नाक, कान, आँख आदि अवयवों को बनाने वाला दूसरा होना चाहिए क्योंकि जो संयोग से उत्पन्न होता है उसको संयुक्त करने वाला निराकार चेतन अवश्य होना चाहिए। जो कोई यहाँ ऐसा कहे कि ईश्वर ने स्वेच्छा से आप ही आप अपना शरीर बना लिया तो भी वही सिद्ध हुआ कि शरीर बनाने से पूर्व निराकार था। इसलिए परमात्मा कभी शरीर धारण नहीं करता किन्तु निराकार होने से सब जगत् को सूक्ष्म कारणों से स्थूलाकार बना देता है।''

प्रश्न 2. : ईश्वर साकार है अथवा निराकार? जो निराकार है तो बिना हाथ आदि साधनों के जगत् को न बना सकेगा और जो साकार है तो कोई दोष नहीं आता।

उत्तर – ''ईश्वर निराकार है, जो साकार अर्थात् शरीर युक्त है वह ईश्वर नहीं, क्योंकि वह परिमित शक्ति युक्त, देश-काल वस्तुओं में परिछिन्न, क्षुधा, तृष्णा, छेदन, भेदन, शीतोष्ण ज्वर, पीड़ादि सहित होवे। इसमें जीव के बिना ईश्वर के गुण कभी नहीं घट सकते। जैसे तुम और हम साकार अर्थात् शरीरधारी हैं इससे त्रसरेणु अणु, परमाणु, और प्रकृति को अपने वश में नहीं ला सकते वैसे ही स्थूल देहधारी परमेश्वर भी उन सूक्ष्म पदार्थों से स्थूल जगत् नहीं बना सकता। जो परमेश्वर भौतिक इन्द्रिय गोलक हस्तपादादि अवयवों से रहित है परन्तु उसकी अनन्त शक्ति बल पराक्रम है, उनसे सब काम करता है जो जीव और प्रकृति से कभी न हो सकते। जब वह प्रकृति से भी सूक्ष्म और उनमें व्यापक है तभी उनको पकड़कर जगदाकार कर देता है।''

स्वामी दयानन्द के उक्त कथन में ईश्वर को निराकार मानने का सबसे अधिक प्रबल हेतु उसका सर्वव्यापक होना स्वीकार किया है और वास्तव में यदि ईश्वर को सर्वव्यापक स्वीकार किया जाए तब तो वह निराकार ही सिद्ध होता है और सभी मत-मतान्तरों के अनुयायी ईश्वर को सर्वव्यापक ही मानते हैं अतः सर्वव्यापकत्व किसमें हो

सकता है यह विचारणीय तथ्य है–

यह एक वैज्ञानिक खोजों से पता चलता है कि प्रत्येक पदार्थ में उससे अधिक सूक्ष्म पदार्थ ही व्याप्त हो सकता है। इस सूक्ष्मता के क्रम में पृथ्वी के परमाणु सबसे अधिक स्थूल है यही कारण है कि पृथ्वी में रूप, रस, गन्ध और स्पर्श ये चारों गुण विद्यमान हैं क्योंकि पृथ्वी से अधिक सूक्ष्म जल, अग्नि और वायु ये तीनों पृथ्वी में व्याप्त है। अब पृथ्वी से अधिक सूक्ष्म जल के परमाणु है अतः जल के परमाणुओं में पृथ्वी का गंध गुण नहीं होता अपितु रूप और स्पर्श के साथ रस गुण होता है। इससे यह स्पष्ट है कि अग्नि और वायु के परमाणु जल से अधिक सूक्ष्म है।

अब अग्नि के केवल स्पर्श और रूप ये ही दो गुण रह जाते हैं। वस्तुतः यही साकारता की सीमा है। क्योंकि साकार का अर्थ होता है परिमाण वाला और परिमाण, लम्बाई चौड़ाई आदि युक्त होता है। इस प्रकार परिमाण वास्तव में रूप ही है जो अग्नि में रहने वाला गुण है। अतः आकार केवल उन्हीं पदार्थों का हो सकता है जिनमें अग्नि व्याप्त है और अग्नि केवल अग्नि, जल और पृथ्वी इन्हीं तीनों में व्याप्त है इसलिए साकार की सीमा भी अग्नि पर ही समाप्त हो जाती है अर्थात् अग्नि के सर्वव्यापक न होने से आकार भी सर्वव्यापक नहीं है। अब देखिए अग्नि से अधिक सूक्ष्म कितने भौतिक तत्त्व हैं–वायु, आकाश, दस इन्द्रियाँ और ग्यारहवाँ मन, अहंकार, मह तत्त्व और सत्व, रज, तम रूपा प्रकृति, इनसे भी अधिक सूक्ष्म जीवात्मा और जीवात्मा से भी अधिक सूक्ष्म परमात्मा होने से वही सर्वव्यापक है। अतः ईश्वर को सर्वव्यापक कहने से ही वह निराकार सिद्ध होता है।

अब प्रश्न यह है कि बिना हाथों के जगत् की रचना कैसे करता है? यह प्रश्न करने वाले यह भूल जाते हैं कि जिन हाथों को वे किसी वस्तु के बनाने का साधन मानते हैं उन हाथों को भी बनाया गया है

और यदि कहो कि उन हाथों को दूसरे हाथों ने बनाया तब यह प्रश्न उठेगा कि फिर उन हाथों को किसने बनाया और अन्त तक इस प्रश्न का समाधान नहीं हो सकता। जब तक कि यह न मान लिया जायेगा कि हाथों की रचना भी निराकार द्वारा ही हुई है क्योंकि शरीर के सारे अंगों का निर्माण माँ के गर्भ में आन्तरिक रूप से बाह्यकरण की ओर होता है और यह सब कार्य उसी निराकार प्रभु द्वारा होता है।

प्रश्न 3 : जब ईश्वर निराकार है तब उसकी भक्ति किस प्रकार करनी सम्भव है क्योंकि साकार मानने पर तो यह दोष नहीं आता?

उत्तर : जहाँ तक भक्ति का प्रश्न है वह तो निराकार की ही सम्भव है, साकार की तो कभी भक्ति हो ही नहीं सकती। क्योंकि भक्ति से तात्पर्य है जीवात्मा का ईश्वर से याचना करना, ईश्वर की स्तुति करना और वह तभी सम्भव है जब जीवात्मा परमेश्वर के समीप अर्थात् मल विक्षेपों से मुक्त हो। इसके अतिरिक्त आप कहते हैं कि ईश्वर सर्वव्यापक होने से मूर्ति में भी है किन्तु इससे तो कोई इन्कार नहीं है कि मूर्ति में ईश्वर है परन्तु प्रश्न तो यह है कि क्या उसकी भक्ति करने वाला जीवात्मा भी मूर्ति में प्रविष्ट हो सकता है? स्पष्ट उत्तर होगा कि नहीं। तब भक्ति कैसी, हाँ आपके इस कथन में यह अवश्य मान्य है कि ईश्वर सर्वव्यापक होने से जीवात्मा में भी है।

अतः वह अपने अन्दर ही परमेश्वर की भक्ति क्यों न करें क्योंकि प्राप्त को छोड़कर अप्राप्त के पीछे भटकना मूर्खता का द्योतक होता है। इसके अतिरिक्त यह विचार करना भी आवश्यक है कि भक्ति का उद्देश्य क्या है? सर्वथा सभी सामान्य व्यक्ति ईश्वर के गुणों का गान करके उससे कुछ माँगते है। जैसे – धन, ऐश्वर्य, पुत्र, पौत्र, कीर्ति आदि की कामना लेकर ही सामान्यतया भक्ति किया करते हैं। तब मूर्तिपूजा से तो इन उद्देश्यों की पूर्ति होगी नहीं क्योंकि आपकी वाणी तो पत्थर के भीतर प्रविष्ठ होगी नहीं वह तो आकाश में ही

विचरण करेगा तब आपकी याचना कौन सुनेगा और क्योंकि आपने अपनी आत्मा में व्यापक ईश्वर के समक्ष याचना की नहीं। अतः वह आपकी याचना क्यों सुनेगा। स्वामी दयानन्द ने इस विषय में जो उत्तर दिया है वह दृष्टव्य है, वे कहते हैं–

प्रश्न 4. : ईश्वर निराकार है, वह ध्यान में नहीं आ सकता, इसलिए अवश्य मूर्ति होनी चाहिए। भला जो कुछ भी नहीं करे तो मूर्ति के सम्मुख जा हाथ जोड़ परमेश्वर का स्मरण करते और नाम लेते हैं। इसमें क्या हानि है?

उत्तर – जब परमेश्वर निराकार है, सर्वव्यापक है तब उसकी मूर्ति ही नहीं बन सकती और जो मूर्ति के दर्शन मात्र से परमेश्वर का स्मरण होवे तो परमेश्वर के बनाये पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति आदि अनेक पदार्थ, जिनमें ईश्वर ने अद्‌भुत रचना की है क्या ऐसी रचनायुक्त पृथ्वी, पहाड़ादि परमेश्वर रचित महामूर्तियों कि जिन पहाड़ आदि से मनुष्यकृत मूर्तियाँ बनती हैं उनको देखकर परमेश्वर का स्मरण नहीं हो सकता। जो तुम कहते हो मूर्ति को देखने से परमेश्वर का स्मरण होता है यह तुम्हारा कथन सर्वथा मिथ्या है और जब वह मूर्ति सामने न होगी तो परमेश्वर का स्मरण न होने से मनुष्य एकान्त पाकर चोरी जारी आदि कुकर्म करने में प्रवृत्त भी हो सकता है क्योंकि वह जानता है कि इस समय यहाँ मुझे कोई नहीं देखता। इसलिए वह अनर्थ किए बिना नहीं चूकता आदि अनेक दोष पाषादि मूर्ति पूजा करने से सिद्ध होते हैं।

अब देखिए! जो पाषाणादि मूर्तियों को न मानकर सर्वदा सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, न्यायकारी परमात्मा को सर्वत्र जानता और मानता है वह पुरुष सर्वत्र सर्वदा परमेश्वर को सबके भले-बुरे कर्मों का द्रष्टा जानकर एक क्षण मात्र भी परमात्मा से अपने को पृथक् न जान के कुकर्म करना तो कहाँ रहा किन्तु मन में कुचेष्टा भी नहीं कर

सकता । क्योंकि वह जानता है कि जो मैं मन, वचन और कर्म से भी कुकर्म करूँगा तो इस अन्तर्यामी के न्याय से बिना दण्ड पाये कदापि न बचूंगा और नाम स्मरण मात्र से कुछ भी फल नहीं होता । जैसा कि मिश्री कहने से मुँह मीठा और नीम-नीम कहने से मुँह कडुवा नहीं होता किन्तु जीभ से चखने ही से मीठा या कडुवापन जाना जाता है । इससे आगे एक अन्य प्रश्न के उत्तर में स्वामी दयानन्द ने इसी तथ्य को और अधिक स्पष्ट किया है–

प्रश्न 5. : जब परमेश्वर व्यापक है तो मूर्ति में भी है । पुनः चाहे किसी पदार्थ में भावना करके पूजा करना अच्छा क्यों नहीं ? देखो–

न काष्ठे विद्यते देवो न पाषाणे च मृण्मये । भावे हि विद्यते देवास्तस्माद्भावो हि कारणाम् । ।

परमेश्वर देव न काष्ठ न पाषाण, न मृत्तिका से बनाये पदार्थों में है किन्तु परमेश्वर तो भाव में विद्यमान है । जहाँ भाव करें वहाँ ही परमेश्वर सिद्ध होता है ।

उत्तर – जब परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है तो किसी एक वस्तु में परमेश्वर की भावना करना यह ऐसी बात है कि जैसी चक्रवर्ती राजा को सब राज्य की सत्ता से छुड़ा के एक छोटी सी झोंपड़ी का स्वामी मानना । देखो ! यह कितना बड़ा अपमान है । वैसा तुम परमेश्वर का भी अपमान करते हो, जब व्यापक मानते हो तो वाटिका में से पुष्प पत्र तोड़ के क्यों चढ़ाते ? चन्दन घिसके क्यों लगाते ? धूप को जला के क्यों देते ? घण्टा, घड़ियाल झाज, परवाजो को लकड़ी से कूटना, पीटना क्यों करते हो ? तुम्हारे हाथों में है क्यों जोड़ते ? सिर में है, क्यों सिर नमाते ? अन्न, जलादि में है क्यों नैवेध धरते ? जल में है क्यों स्नान कराते ? क्योंकि उन सब पदार्थों में परमेश्वर व्यापक है और तुम व्यापक की पूजा करते हो या व्याप्य की ? और जो व्याप्य की करते हो तो पाषाणादि लकड़ी पर चन्दन पुष्पादि क्यों चढ़ाते हो ? और जो

व्यापक की करते हो तो हम परमेश्वर की पूजा करते हैं ऐसा झूठ क्यों बोलते हो? हम पाषाणादि के पुजारी है, ऐसा सत्य क्यों नहीं बोलते?''

''अब कहिए 'भाव' सच्चा है या झूठा? जो कहो सच्चा है तो तुम्हारे भाव के अधीन होकर परमेश्वर बद्ध हो जायेगा और तुम मृतिका में सुवर्ण रजतादि पाषाण में हीरा पन्ना आदि समुद्रफेन में मोती, जल में घृत, दुग्ध, दही आदि और धूलि में मैदा शक्कर आदि की भावना करके उनको वैसा क्यों नहीं बनाते हो? तुम लोग दुःख की भावना कभी नहीं करते, वह क्यों होता? और सुख की भावना सदैव करते हो, वह क्यों नहीं प्राप्त होता? अन्धा पुरुष नेत्र की भावना करके क्यों नहीं देखता? मरने की भावना नहीं करते, क्यों मर जाते हो? इसलिए तुम्हारी भावना सच्ची नहीं। क्योंकि जैसे में वैसी करने का नाम भावना कहते हैं। जैसे अग्नि में अग्नि, जल में जल जानना और जल में अग्नि, अग्नि में जल समझना अभावना है। क्योंकि जैसे को वैसा जानना ज्ञान और अन्यथा जानना अज्ञान है इसलिए तुम अभावना को भावना और भावना को अभावना कहते हो।''

प्रश्न 6. : साकार में मन स्थिर होता और निराकार में स्थिर होना कठिन है इसलिए मूर्ति पूजा करनी चाहिए।

उत्तर – साकार में मन स्थिर कभी नहीं हो सकता, क्योंकि उसको मन झट ग्रहण करके उसी के एक-एक अवयव में घूमता और दूसरे में दौड़ जाता है और निराकार के ग्रहण में यावत्सामर्थ्य मन अत्यन्त दौडता है तो भी अन्त नहीं पाता। निरवयव होने से चंचल भी नहीं रहता किन्तु उसी के गुण-कर्म स्वभाव का विचार करता-करता आनन्द में मग्न होकर स्थिर हो जाता है और जो साकार में स्थिर होता तो सब जगत् का मन स्थिर हो जाता, क्योंकि जगत् में मनुष्य, स्त्री, पुत्र, धन, मित्र आदि साकार में फंसा रहता है, किन्तु किसी का मन

स्थिर नहीं होता जब तक निराकार में न लगावें क्योंकि निरवयव होने से उसमें मन स्थिर हो जाता है इसलिए मूर्ति पूजा करना अधर्म है ।''

इस प्रकार स्वामी दयानन्द ने युक्ति एवं प्रमाण दोनों के आधार पर यह स्पष्ट किया कि ईश्वर साकार नहीं है अपितु निराकार है । अब इस विषय में यह स्पष्ट कर देना भी अभीष्ट होगा कि क्या ईश्वर अवतार लेता है ?

क्या ईश्वर अवतार होता है ?

अवतारवाद के मानने वालों का मुख्य आधार गीता के निम्नलिखित श्लोक है–

यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानां सृजाम्यहम् ।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे ।। –4.7.8

जब-जब धर्म का विनाश और पाप का उत्थान होता है तब-तब मैं स्वयं आता हूँ । साधु पुरुषों की रक्षा और दुष्टों के विनाश के लिए एवं धर्म की स्थापना के लिए मैं युग-युग में जन्म लेता हूँ ।

यदि इन श्लोकों में कहे कथन को ईश्वर के द्वारा कहा हुआ कथन माना जाये तब तो ये वेद विरुद्ध होने से झूठ है क्योंकि वेद स्वयं ईश्वर का ज्ञान है और उसमें ईश्वर को जन्म मरण और शरीर धारण रहित कहा गया है जैसा कि इसी प्रसंग में पीछे वेद मंत्रों द्वारा स्पष्ट किया गया है । किन्तु यदि इन श्लोकों का अर्थ स्वामी समर्पणानन्द द्वारा रचित ''श्री मद्भागवद् गीता सामर्पण भाष्य'' के अनुसार किया जाये तब तो ये दोनों श्लोक ही मनुष्य के लिए सिद्ध होते हैं, ईश्वर के लिए नहीं । स्वामी समर्पणानन्द ने इन श्लोकों का अर्थ निम्न प्रकार किया है–

(यदा-कदा हि धर्मस्य.....) ''हे अर्जुन ! जब-जब धर्म की ग्लानि होती है तथा अधर्म का उत्थान होता है तब-तब मैं अपनी सृष्टि करता

हूँ अर्थात् लोककल्याणार्थ परमात्मा से माँग कर जन्म लेता हूँ ।''

(परित्राणाय साधूनां .....) उत्तम उद्देश्य की पूर्ति में लगे हुए पुरुषों की रक्षा के लिए तथा दुःखदायी कर्मों में प्रवृत्त दुष्टों के विनाश के लिए अतएव धर्म की स्थापना के लिये मैं युग-युग में जन्म लेता हूँ ।''

इन श्लोकों को श्रीकृष्ण (मनुष्य) के वचन कहने में श्री स्वामी समर्पणानन्द जी ने यह हेतु दिया है ''यदि श्री कृष्ण अपने को भगवान् समझते तो गीता में निम्न श्लोक लिखा है –

ईश्वरः सर्वभूतानां हृदेशेऽर्जुन तिष्ठति ।
श्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया ।।
तमेव शरणं गच्छ ।। –18.61.62

इस प्रकार न कहते यहाँ कहा गया है कि हे अर्जुन! ईश्वर सबके हृदय से विराजमान है, तू उसकी शरण में जा । सो ये श्लोक श्री कृष्ण ने एक योग शक्ति सम्पन्न जीवात्मा के रूप में कहे हैं, परमात्मा के रूप में नहीं । इस गीता के श्लोक में विषय में स्वामी दयानन्द के विचार भी दृष्टव्य है–

प्रश्न 7.: श्री कृष्ण जी कहते हैं कि जब-जब धर्म का लोप होता है तब-तब मैं शरीर धारण करता हूँ ।

उत्तर – यह बात वेद विरुद्ध होने से प्रमाण नहीं और ऐसा हो सकता है कि श्रीकृष्ण धर्मात्मा और धर्म की रक्षा करना चाहते थे कि मैं युग-युग में जन्म ले के श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों का नाश करूँ तो कुछ दोष नहीं । क्योंकि ''परोपकराय सतां विभूतयः'' परोपकार के लिए सत्पुरुषों का तन, मन, धन होता है । तथापि इससे श्रीकृष्ण ईश्वर नहीं हो सकते ।''

इसके अतिरिक्त अवतारवादी लोग यह कहते हैं कि यदि ईश्वर अवतार न लेते तो कंस, रावणादि दुष्टों का विनाश कैसे हो सकता था । इस प्रकार की बात कहने वाले व्यक्ति ईश्वर की सामर्थ्य एवं

शक्ति के विषय में कुछ नहीं जानते स्वामी दयानन्द इस प्रकार की शंका का समाधान करते हुए कहते हैं–''जो ईश्वर शरीर धारण किए बिना जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करता है उसके सामने कंस और रावण आदि एक कीड़ी के समान भी नहीं।'' बल्कि यदि अधिक वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में विचार करें तो इस ब्रह्माण्ड में जो ईश्वर ने केवल अपने संकल्प मात्र से रचा है, इससे पृथ्वी लोक ही कीड़ी के समान है तब पृथ्वी पर जन्म लेने वाले मनुष्य शरीर का तो अस्तित्व ही विचारणीय है क्योंकि यह जो सूर्य है जिसके चारों ओर यह पृथ्वी घूमती है यह पृथ्वी से साढ़े तेरह लाख गुना बड़ा है और ऐसे-ऐसे विशाल न जाने कितने लोक एक आकाश गंगा में हैं।

वैज्ञानिकों का कहना है कि द्युलोक में अनेक चमकने वाले ऐसे तारे हैं जिनका आज तक प्रकाश पृथ्वी तक नहीं आ पाया है। अब कल्पना कीजिए 3,00,000 किलोमीटर प्रति सैकिण्ड चलने वाला प्रकाश इस पृथ्वी पर न जाने कब से चलकर अभी तक नहीं पहुँच पाया है, यह इस ब्रह्माण्ड की विशालता का सबसे प्रबल प्रमाण है और इस विशाल ब्रह्माण्ड को जो शक्ति रचकर धारण किए हुए है और जिसके संकल्प मात्र से इसका विस्तार एवं प्रलय हो जाते हैं उस शक्ति के विषय में ऐसी कल्पना करना मूर्खता के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। इस विषय में स्वामी दयानन्द ने जो निष्पक्ष एवं दुराग्रह रहित जगत् के परोपकारार्थ अपने विचार दिए हैं वे अति महत्वपूर्ण है। अतः मैं उनके द्वारा अवतारवाद के खण्डन को उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत करना अच्छा मानता हूँ जो निम्नलिखित हैं–

प्रश्न 8. : जो ईश्वर अवतार न लेवे तो कंस रावणादि दुष्टों का नाश कैसे हो सके?

उत्तर – ''प्रथम जो जन्मा है वह अवश्य मृत्यु को प्राप्त होता है। जो ईश्वर अवतार शरीर धारण किए बिना जगत् की उत्पत्ति, स्थिति प्रलय करता है उसके सामने कंस और रावणादि एक कीड़ी के

समान भी नहीं । वह सर्वव्यापक होने से कंस रावणादि के शरीरों में भी परिपूर्ण हो रहा है, जब चाहे उसी समय मर्मच्छेदन कर नाश कर सकता है । भला इस अनन्त गुण, कर्म, स्वभाव युक्त परमात्मा को एक क्षुद्र जीव को मारने के लिए जन्म-मरण युक्त कहने वाले को मूर्खपन से अन्य कुछ विशेष उपमा मिल सकती है, और जो कोई कहे कि भक्त जनों के उद्धार करने के लिए जन्म लेता है तो भी सत्य नहीं, क्योंकि जो भक्त ईश्वर की आज्ञानुकूल चलते हैं उनके उद्धार करने का पूरा सामर्थ्य ईश्वर में है ।

क्या ईश्वर के पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र आदि जगत् को बनाने, धारण और प्रलय करने रूप कर्मों से कंस रावणादि का वध और गोवर्धन पर्वतों का उठाना बड़े कर्म है ? जो कोई इस सृष्टि में परमेश्वर के कर्मों का विचार करे तो 'न भूतो न भविष्यति' ईश्वर सदृश कोई न है, न होगा । और युक्ति से भी ईश्वर का जन्म सिद्ध नहीं होता । जैसे कोई अनन्त आकाश को कहे कि गर्भ में आया व मुठी में धर लिया, ऐसा कहना कभी सच नहीं हो सकता क्योंकि आकाश अनन्त और सब में व्यापक है । इससे न आकाश बाहर आता और न भीतर जाता, वैसे अनन्त सर्वव्यापक परमात्मा के होने से उसका आना कभी सिद्ध नहीं हो सकता । जाना व आना वहाँ हो सकता है जहाँ न हो । क्या परमेश्वर गर्भ में व्यापक नहीं था जो कहीं से आया ? और बाहर नहीं था जो भीतर से निकला ? ऐसा ईश्वर के विषय में कहना और मानना विद्याहीनों के सिवाय कौन कह और मान सकेगा ? इसलिए परमेश्वर का आना-जाना, जन्म-मरण कभी सिद्ध नहीं हो सकता, इसलिए ईसा आदि भी ईश्वर के अवतार नहीं ऐसा समझ लेना । क्योंकि राग, द्वेष, क्षुधा, तृषा, भय, शोक, सुख, दुःख, जन्म-मरण आदि गुण युक्त होने से मनुष्य थे ।''

(3) ईश्वर सर्वशक्तिमान् है

ईश्वर के निराकार होने से ही वह सर्वव्यापक एवं सर्वशक्तिमान् है। स्वामी दयानंद के अनुसार सर्वशक्तिमान् से अभिप्राय है–''जो अपने कार्य करने में किसी अन्य की सहायता की इच्छा नहीं करता, अपने ही सामर्थ्य से अपने सब काम पूरे करता है, इससे उस ईश्वर का नाम सर्वशक्तिमान् है।'' ऋग्वेद में कहा है–

चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोऽयः स्वः परिभूरेष्यां दिवम्।।

'सर्वव्यापक परमेश्वर अपनी शक्ति से भूमि की रक्षा करता है। वही सबसे अधिक शक्तिशाली है और वही सर्वव्यापक है।' इसी प्रकार यजुर्वेद में कहा है कि ''यह सब चराचर जगत् उस सर्वशक्तिमान् परमेश्वर से आच्छादित है।''

इसके अतिरिक्त चारों वेद मंत्र संहिताओं में अनेक ऐसे मंत्र है जिनमें ईश्वर के सर्वशक्तिमान् स्वरूप का वर्णन है यथा –ऋग्वेद में कहा है–

न हि त्वा शरो न तूरो न घृष्णुर्न त्वा योधो मन्यमानो युयोध।

इन्द्र न किष्ट्वा प्रत्यस्त्येषां विश्वा जातान्यभ्यसि तानि। 6.25.15

राजा और राजपुरुषों को चाहिये कि विशेष करके सेनाजनों से ऐसे पराक्रम और विज्ञान बढ़ावे जिसमें कोई भी युद्ध करने की इच्छा न करे।

ईश्वर के सर्वशक्तिमान् होने का बहुत से विद्वान् यह तात्पर्य करते है कि ईश्वर जो चाहे सो कर सकता है। स्वामी दयानन्द को सर्वशक्तिमान् का यह अभिप्राय मान्य नहीं है। वे लिखते हैं – ''जो स्वाभाविक नियम अर्थात् जैसा अग्नि, उष्ण, जल, शीतल पृथ्वी आदि सब जड़ों को विपरीत गुण वाले ईश्वर भी नहीं कर सकता। जैसे आप जड़ नहीं हो सकते, वैसे जड़ को चेतन भी नहीं कर सकता। और इसलिए सर्वशक्तिमान् का अर्थ इतना ही है कि परमात्मा बिना किसी

के सहाय के अपने सब काम पूर्ण कर सकता है ।''

इस विषय में अनेक व्यक्ति यह प्रश्न करते हैं कि जब ईश्वर निराकार है तब वह सर्वशक्तिमान् कैसे हो सकता है क्योंकि शक्ति तो शरीरादि के अवयवों हाथ-पांव आदि में ही होती है जो साकार है अतः निराकार में शक्ति नहीं होती?

यह प्रश्न स्वयं में ही मिथ्या सिद्ध होता है क्योंकि जैसा कहा कि शक्ति हाथ-पांव आदि में होती है तब मृतशरीर में भी हाथ-पाँव होते हैं तब वह क्यों स्वयं को अग्नि से नहीं बचाते? यथार्थ यह है कि हाथ-पाँव किसी अन्य तत्त्व की शक्ति से संचालित होते हैं और वह तत्त्व जीवात्मा है जो कि निराकार है । इसी प्रकार लोक में भी देखा जा सकता है कि जो पदार्थ जितना अधिक सूक्ष्म होता है उतना ही अधिक शक्ति सम्पन्न भी होता है जैसे – परमाणु जो स्थूल पदार्थों में सबसे अधिक सूक्ष्म माना जाता है उसकी शक्ति से भला कौन परिचित नहीं है । इसी प्रकार ईश्वर से अधिक सूक्ष्म अन्य कोई नहीं । इसीलिए वह निराकार भी है और सर्वशक्तिमान् भी । ईश्वर के सर्वशक्तिमान् स्वरूप की ओर अधिक स्पष्ट करते हुए स्वामी दयानन्द ने लिखा है–

प्रश्न 9. ईश्वर सर्वशक्तिमान् है अथवा नहीं?

उत्तर – है, परन्तु जैसा तुम सर्वशक्तिमान् शब्द का अर्थ जानते हो वैसा नहीं किन्तु सर्वशक्तिमान का यही अर्थ है कि ईश्वर अपने काम अर्थात् उत्पत्ति, पालन, प्रलय आदि और सब जीवों के पुण्य-पाप की यथायोग्य व्यवस्था करने में किंचित भी किसी की सहायता नहीं लेता अपने अनन्त सामर्थ्य से ही सब अपना काम पूर्ण कर लेता है ।

प्रश्न 10. हम तो ऐसा समझते हैं कि ईश्वर चाहे सो करे क्योंकि उसके ऊपर दूसरा कोई नहीं है ।

उत्तर – ''वह क्या चाहता है? जो तुम कहो कि सब कुछ चाहता और कर सकता है तो हम तुम से पूछते हैं कि परमेश्वर अपने

को मार, अनेक ईश्वर बना, स्वयं अविद्वान्, चोरी व्यभिचारादि पापकर्म कर और दुःखी भी हो सकता है? जैसे ये काम ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव से विरुद्ध है तो जो तुम्हारा कहना है कि वह सब कुछ कर सकता है यह कभी नहीं घट सकता। इसलिए सर्वशक्तिमान् शब्द का अर्थ जो हमने कहा वही ठीक हैं''

ईश्वर के सर्वशक्तिमान् का यह अर्थ करने में कि वह चाहे सो कर सकता है यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि जब हम यह कल्पना करते हैं कि ईश्वर जैसा चाहे वैसा करे, तब हम अपनी कल्पना की उड़ान द्वारा यह विचार करते हैं कि वह राई का पहाड़ और पहाड़ को राई भी बना सकता है, उसकी कृपा से पंगु भी पर्वत पर चढ़ सकता है और अन्धा व्यक्ति भी देख सकता है। किन्तु हम यह विचार नहीं करते कि यदि उसे कृपा करनी ही होती और राई का पहाड़ और पहाड़ की राई बनाना ही होता तब उसे पर्वत और राई को अलग-अलग बनाने की आवश्यकता ही नहीं थी क्योंकि तब तो जब राई की आवश्यकता होती तब पर्वत को राई बना देता और जब पहाड़ की आवश्यकता होती तब उसको पुनः पर्वत बना देता।

इसी प्रकार अन्धे पर कृपा करके उसे बिना आँखों के ही सब कुछ दिखा देता तब आँखें ही क्यों न दे देता? अर्थात् आँखें छीनने की ही कोई आवश्यकता न थी और फिर प्रभुकृपा किसी एक अन्धे पर ही क्यों, सब अंधों पर ही हो जाती, तब तो अंधेपन की समस्या ही न रहती। इसलिए यह धारणा गलत है कि ईश्वर के सर्वशक्तिमान् होने का अर्थ 'जो चाहे सो करना' है। जैसे एक राजा अपने शासनकाल में अपने ही बनाये नियमों के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता उसी प्रकार ईश्वर भी अपने बनाये नियमों के विरुद्ध कुछ नहीं करता अपितु वह अपने नियमों का निर्माण करने में उनके अनुसार सृष्टि का संचालन

करने और इसकी उत्पत्ति और प्रलय करने में स्वयं किसी अन्य की सहायता नहीं लेता सर्वशक्तिमान् का यही अर्थ उचित है ।

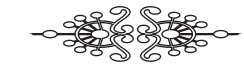

(4) ईश्वर न्यायकारी है

ईश्वर के न्यायकारी स्वरूप को निरुपित करते हुए स्वामी दयानन्द ने लिखा है – ''न्यायं कर्तु शीलमस्य न्यायकारीश्वरः । जिसका न्याय अर्थात् पक्षपात रहित धर्म करने ही का स्वभाव है, इससे उस ईश्वर का नाम न्यायकारी है ।'' जैसा कि यजुर्वेद में कहा है–

शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा । –36.9

''सबका मित्र ईश्वर हम सबका कल्याणकारी होवे, सबसे श्रेष्ठ ईश्वर कल्याणकारी होवे । न्यायकारी ईश्वर हम सबका कल्याणकारी होवे ।'' इसी प्रकार ऋग्वेद के मंत्र में कहा है कि ''ईश्वर धर्म कार्यों का योग्य अध्यक्ष है ।'' वह जीवों को अपने न्यायपूर्ण स्वभाव से उनके कर्मों का यथायोग्य फल देने वाला है ।

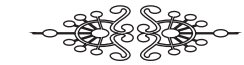

(5) ईश्वर दयालु है

यहाँ पर यह विशेष विवेच्य तथ्य है कि न्यायकारी के साथ ईश्वर दयालु भी कहा गया है, जिसका अभिप्राय सामान्यतः जीवों के पापों को क्षमा करने वाला माना जाता है जिससे न्यायकारीत्व और दयाकृतत्व दोनों परस्पर विरोधी लक्षण प्रतीत होते हैं । किन्तु स्वामी दयानन्द ने ईश्वर के दयालु स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है–''जो अभय का दाता, सत्यासत्य सब विद्याओं को जानने, सब सज्जनों की

रक्षा करने और दुष्टों को यथायोग्य फल देने वाला है इससे परमात्मा का नाम दयालु है।'' ईश्वर के दयालु स्वरूप के विषय में ऋग्वेद में लिखा है–

यो मृडयाति चकृषे चिदागो वयं स्याम वरुणे अनागाः।

अनु वृतान्यदितेर्ऋधन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।। –7.87.7

परमेश्वर दयालु है। अतः वह पाप करने वाले को भी सुख देता है। हम निष्पाप बनकर परमेश्वर के पास रहें। परमेश्वर के नियमों का पालन करें। हम सुखी हों।

इस विषय में अनेक व्यक्ति यह शंका करते है कि दया और न्याय दोनों एक साथ नहीं हो सकते क्योंकि पाप का क्षमा कर देना दया है किन्तु यह न्याय नहीं है और यदि पाप का दण्ड दुःख देवे तब यह न्याय तो है किन्तु दया नहीं है। इस प्रश्न को स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में उपस्थित किया तथा इस का इस प्रकार उत्तर दिया–

प्रश्न 11. परमेश्वर दयालु और न्यायकारी है या नहीं?

उत्तर – है।

प्रश्न 12. ये दोनों गुण परस्पर विरुद्ध हैं जो न्याय करे तो दया और दया करे तो न्याय छूट जाये क्योंकि न्याय उसको कहते हैं कि जो कर्मों के अनुसार न अधिक न न्यून सुख-दुःख पहुँचाना। और दया उसको कहते हैं जो अपराधी को बिना दण्ड दिए छोड़ देना।

उत्तर – ''न्याय और दया का नाममात्र भेद है क्योंकि जो न्याय से प्रयोजन सिद्ध होता है वही दया से दण्ड देने का प्रयोजन है कि व्यक्ति अपराध करने से बंद होकर दुःख को प्राप्त न हो, वही दया कहाती है जो पराये दुःखों का छुड़ाना और जैसा अर्थ दया और न्याय का तुमने किया वह ठीक नहीं क्योंकि जिसने जैसा जितना बुरा कर्म किया हो उसको उतना वैसा ही दण्ड देना चाहिए। उसी का नाम न्याय है और जो अपराधी को दण्ड न दिया जाये तो दया का नाश हो जाये

क्योंकि एक अपराधी डाकू को छोड़ देने से हज़ारों धर्मात्मा पुरुषों को दुःख देना है, जब एक को छोड़ देने से हज़ारों पुरुषों को दुःख प्राप्त होता है वह दया किस प्रकार की हो सकती है? दया वही है कि उस डाकू को कारागार में रखकर पाप करने से बचाना डाकू पर और डाकू के मार देने से अन्य हजारों व्यक्तियों पर दया प्रकाशित होती है।''

प्रश्न 13. फिर दया और न्याय दो शब्द क्यों हुए? क्योंकि उन दोनों का अर्थ एक ही होता है तो दो शब्दों का होना व्यर्थ है इसलिए एक शब्द का रहना तो अच्छा था। इससे क्या विदित होता है कि दया और न्याय का एक प्रयोजन नहीं है।

उत्तर—क्या एक अर्थ के अनेक नाम और एक नाम के अनेक अर्थ नहीं होते?

प्रश्न 14. होते हैं।

उत्तर – तो पुनः तुम्हें शंका क्यों हुई?

प्रश्न 15. संसार में सुनते हैं इसलिये।

उत्तर – ''संसार में तो सच्चा झूठ दोनों सुनने में आता है परन्तु उसका विचार से निश्चिय कर पाना अपना काम है। देखो! ईश्वर की पूर्ण दया तो यह है कि जिसने सब जीवों के प्रयोजन सिद्ध होने के अर्थ जगत् के सकल पदार्थ उत्पन्न करके दान दे रखे हैं। इससे भिन्न दूसरी बड़ी दया कौन सी है, अब न्याय का फल प्रत्यक्ष दीखता है कि सुख-दुःख की व्यवस्था अधिक और न्यूनता से फल को प्रकाशित कर रही है। इन दोनों का इतना ही भेद है कि जो मन में सबको सुख होने और दुःख छूटने की इच्छा और क्रिया करना है वह दया और बाह्य चेष्टा अर्थात् बन्धन छेदनादि यथावत् दण्ड देना न्याय कहाता है। दोनों का एक प्रयोजन यह है कि सबको पाप और दुःखों से पृथक् कर देना।''

इस प्रकार स्पष्ट है कि ईश्वर न्यायकारी भी है और दयालु भी

है। इन दोनों को एक-दूसरे का विरोधी समझना एक बड़ी भूल है जिसका स्वामी दयानन्द ने निवारण किया है। दूसरे शब्दों में न्याय और दया दोनों एक दूसरे के विपरीत न होकर एक दूसरे के पूरक लक्षण हैं। अतः ईश्वर न्यायकारी है इसीलिए दयालु है और दयालु है इसीलिए न्यायकारी है।

(6) ईश्वर अजन्मा है

ईश्वर को वेद में अजन्मा कहा गया है। जैसे ऋग्वेद में कहा है कि–

अजो न क्षां दाधार पृथिवीं तस्तम्भ द्यां मंत्रेभिः सत्यैः। –1.67.3

वह अजन्मा परमेश्वर अपने अबाधित विचारों से समस्त पृथिवी आदि को धारण करता है। इसी प्रकार यजुर्वेद में कहा है कि ईश्वर कभी भी नस-नाड़ियों के बंधन में नहीं आता अर्थात् अजन्मा है।

ईश्वर को अजन्मा मानने में सबसे अधिक प्रबल युक्ति यह है कि जन्म के साथ अनेक ऐसी बातें जुड़ी हुई हैं जो ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के विपरीत है। जैसे जो जन्मता है वह मृत्यु को भी अवश्य प्राप्त होता है तथा जन्म के साथ ही शरीर आदि में होने वाले दुःखों को सहना पड़ता है जिससे ईश्वर को आनन्दस्वरूप नहीं माना जा सकेगा और जो इस प्रकार से जन्म-मरण के चक्र में पड़ने वाला होगा उसे न तो सर्वव्यापक ही कहा जा सकता है और न सर्वशक्तिमान् ही कहा जा सकता है और वेदों में वर्णित ईश्वर के स्वरूप में उसके एक गुण का दूसरे गुण से ऐसा तारतम्य है कि एक गुण से दूसरा गुण स्वतः ध्वनित होने लगता है जैसे–सच्चिदानन्द होने से वह निराकार है क्योंकि आकार का तात्पर्य है सावयव होना और सावयव कभी भी

सर्वशक्तिमान नहीं हो सकता क्योंकि अवयवों का संयोग बिना दूसरे के किए नहीं हो सकता। अतः ईश्वर निराकार है और निराकार होने से वह सर्वशक्तिमान् है। इसी प्रकार सर्वशक्तिमान होने से वह न्यायकारी है और न्यायकारी होने से दयालु है तथा अजन्मा है क्योंकि जो जन्म-मरण वाला हो वह सर्वशक्तिमान नहीं हो सकता और न आनन्द स्वरूप ही होता। अतः वह अजन्मा है।

(7) ईश्वर अनन्त है

अजन्मा होने से ईश्वर अनन्त है क्योंकि जन्म मृत्यु की अपेक्षा रखता है, सत्य अर्थात् अन्त और जन्म एक दूसरे की पूर्वापर स्थितियाँ हैं अतः ईश्वर अनन्त अर्थात् अन्त से रहित है। वेद में ईश्वर को अनन्त बताते हुए कहा है – **अनन्त विततं पुरुषानन्तम् अनन्तवच्चा समन्ते।** अर्थात् 'अनन्त ईश्वर सर्वत्र फैला हुआ है।' ऋग्वेद में कहा है कि 'उनके बल का अन्त कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता। उसका बल अनन्त है।'

(8) ईश्वर निर्विकार है

अजन्मादि गुणों की पुष्टि के लिए वेद में ईश्वर को निर्विकार कहा है क्योंकि विकारादि जन्म की अपेक्षा रखते हैं और ईश्वर को अज अर्थात् अजन्मा कहा है। अतः वह निर्विकार अर्थात् शुद्ध स्वरूप है। वेद की इसी मान्यता के आधार पर महर्षि पांतञ्जली ने योगदर्शन में लिखा है–

'क्लेशकर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः'

जो अविद्या, क्लेश, कुशल, अकुशल, इष्ट, अनिष्ट और मिश्र फलदायक कर्मों की वासना से रहित है वह सब जीवों से विशेष ईश्वर कहाता है। अतः वेद की यह मान्यता है कि ईश्वर निर्विकार है, पूर्ण रूप से ऋषियों और दार्शनिकों का प्रेरणा स्रोत रही है। इसी से ईश्वर के शुद्ध स्वरूप का सर्वत्र दार्शनिक जगत् में प्रतिपादन हुआ है।

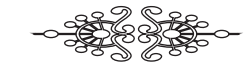

(9) ईश्वर अनादि है

ईश्वर का कोई आदि नहीं है इसलिए वह अनादि है क्योंकि आदि के साथ अन्त भी लगा होता है अर्थात् जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु भी अवश्य होती है और जिसकी उत्पत्ति होती है उसका विनाश भी अवश्य होता है। इस विषय में यह विचार करना भी आवश्यक है कि आदि और अन्त क्या है? वस्तुतः किसी तत्व के प्रकट होने को उत्पन्न होना कहा जाता है और उसका विनाश हो जाना अन्त कहलाता है जब परमाणुओं के विशेष संयोग से कोई विशेष वस्तु प्रकट होती है तब उस वस्तु की उत्पत्ति मानी जाती है और परमाणुओं के विखण्डित हो जाने को ही उस वस्तु को नष्ट होना कहा जाता है।

इस रूप में वास्तव में समस्त जगत् का मूल कारण प्रकृति भी अनादि है और जीव भी अनादि है तथा इन दोनों के आश्रयभूत पदार्थ आकाश, देश और जीवों के कर्म भी अनादि हैं। अतः जब प्रकृति और जीव भी अनादि है तब इनका आधार परमेश्वर सादी कैसे हो सकता है? सामवेद में ईश्वर के अनादि स्वरूप को निरूपति करते हुए कहा है—''जनुषा सनादसि'' अर्थात् ईश्वर सनातन (अनादि) है। यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जब अजन्मा कहने से ही अनादित्व सिद्ध होता है फिर ईश्वर को अनादि क्यों कहा? इसके उत्तर में मात्र इतना

कहना ही पर्याप्त होगा कि ईश्वर को सच्चिदानन्द कहने से ही, इसमें ईश्वर के समस्त गुण समाहित हो जाते हैं किन्तु दार्शनिक ऊहापोह को शान्त करने एवं जीवों के विभिन्न क्षेत्रों में तदनुरूप आचरण करने के लिए उसके विभिन्न नामों की स्तुति की गई है ।

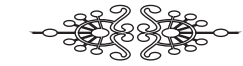

(10) ईश्वर अनुपम है

वेद के अनेक मंत्रों में ईश्वर को अनुपम कहा है अर्थात् उसके समान शक्ति सम्पन्न अन्य कोई नहीं इसलिए वह अनुपम है । जैसा कि सामवेद में कहा है कि –**न कि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् । नक्येवं यथा त्वम् । ।** अर्थात् ईश्वर के समान न ही तो कोई श्रेष्ठ है और न ही उससे ज्येष्ठ है । इसी प्रकार ऋग्वेद में कहा है कि **'न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते'** अर्थात् ईश्वर के समान न कोई जन्मा है और न जन्मेगा । अथर्ववेद में कहा है **'तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः'** अर्थात् संसार में कुछ भी ऐसा नहीं है जिससे ईश्वर की उपमा दी जा सके इसलिए वह अनुपम है ।

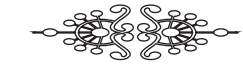

(11) ईश्वर सर्वाधार है

वेद की चारों मंत्र संहिताओं में समस्त चराचर जगत् एवं जीवों का आधार ईश्वर कहा गया है अर्थात् समस्त पृथ्वी आदि लोक-लोकान्तर उसी के आधार पर टिके हैं इसीलिए वह ईश्वर सर्वाधार है । अथर्ववेद में कहा है कि ''वह भूत और भविष्य में जो भी कुछ है सबका आधार है ।'' इसी प्रकार ऋग्वेद में स्पष्ट रूप से पृथ्वी आदि लोकों का आधार ईश्वर को कहा है । ईश्वर इस सृष्टि की रचना,

पालन और प्रलय करने वाला है, वह कोई व्यक्ति विशेष नहीं अपितु शक्ति विशेष है क्योंकि अपनी शक्तियों द्वारा ही वह सब कार्य करता है, जिसकी शक्ति के सम्मुख चन्द्र, तारा, सूर्य, विद्युतादि की शक्तियाँ अति तुच्छ हैं, ब्रह्म की शक्ति का वर्णन करता हुआ उपनिषद् कहता है– ''सूर्य, चन्द्रमा, तारे, बिजली और अग्नि ये सब ईश्वर में प्रकाश नहीं कर सकते, किन्तु इन सबको प्रकाशित करने वाला एक वही (ईश्वर) है ।'' इस विषय में यह दृष्टव्य है कि जो विद्वान् यह मानते हैं कि ब्रह्म-विद्या का आधार वेद-मंत्र भाग नहीं अपितु उपनिषद् हैं, उन्हें यह जान लेना चाहिए कि उपनिषदिक ब्रह्म-विद्या का आधार वेद ही है क्योंकि यह समस्त विचार वेद-मंत्रों में स्पष्ट रूप से वर्णित हैं। जैसे–ऋग्वेद में कहा है **सदाधार पृथ्वीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम्**। अर्थात् ईश्वर, पृथ्वी और द्युलोक दोनों का आधार है, वही सबका आधार है । इसी प्रकार यजुर्वेद में कहा है–

यो भूतानामधिपतिर्यस्मिँल्लोकाऽअधि श्रिताः ।
यऽईशे महतो महाँस्तेन गृह्णामि त्वामहं मयि गृहणामि त्वामहम् ।।

–20.32

जो उपासक अनन्त ब्रह्म में निष्ठा रखनेवाला ब्रह्म से भिन्न किसी भी वस्तु को उपास्य नहीं जानता वही इस जगत् में विद्वान् माना जाना चाहिए। इसी कारण भारतीय चिन्तनधारा के मूलस्रोत को दार्शनिक धारा से पृथक् करने का प्रयास किया गया, जिसको स्वामी दयानन्द ने मूल धारा से पुनः जोड़ दिया । इस विषय में भी कुछ विद्वान् अग्र प्रश्न करते हैं–

प्रश्न 15. जब ईश्वर सबका आधार है तब ईश्वर का आधार क्या है?

उत्तर – ईश्वर सबका आधार होने के साथ-साथ स्वयं अपना भी आधार है क्योंकि आधार उसको कहा जाता है जो सर्वशक्तिमान हो और ईश्वर सर्वशक्तिमान् है इसीलिए वह सबका आधार है और

उसका अन्य कोई आधार नहीं हो सकता क्योंकि किसी का आधार उससे अधिक शक्तिशाली ही होता है, लोक में भी हम देखते हैं कि प्रत्येक निर्बल अपने से सबल के आश्रय में ही रहता है और कोई भी अपने से निर्बल के आश्रय में नहीं रहता इसी प्रकार क्योंकि ईश्वर से अधिक शक्ति-सम्पन्न अन्य जीवादि कोई नहीं इसीलिए उसका कोई आधार नहीं । जैसे – एक राज्य में सब राजा के आश्रित होते हैं किन्तु राजा को अपनी रक्षा के लिए किसी अन्य के आधार या आश्रय की आवश्यकता नहीं होती । इसी प्रकार ईश्वर भी सर्वाधार है किन्तु उसे किसी अन्य के आश्रय की आवश्यकता नहीं है । क्योंकि ऐसा होने पर वह सर्वशक्तिमान नहीं रहेगा और सर्वशक्तिमान न होने से उसमें किसी भी अन्य सर्वव्यापक आदि गुण को नहीं माना जा सकेगा ।

प्रश्न 16. ईश्वर को जीव का आधार क्यों माना जाये ?

उत्तर – जीव स्वयं पूर्णशक्ति सम्पन्न न होकर अल्पशक्ति वाला है तथा उसके कर्मों का यथायोग्य फल देना यह ईश्वर का काम है इसलिए वह ईश्वर के आश्रय में ही समस्त सुख-दुःखादि का भोग करता है । अतः जीव ईश्वर के आश्रय में रहता है ।

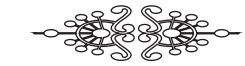

(12) ईश्वर सर्वेश्वर है

स्वामी दयानन्द ने ईश्वर के सर्वेश्वर नाम की व्याख्या करते हुए कहा है–''जिसका सत्य विचारशील ज्ञान और अनन्त ऐश्वर्य है, इससे उस परमात्मा का नाम सर्वेश्वर है ।'' ऋग्वेद में ईश्वर को सबसे अधिक ऐश्वर्यवान् बताते हुए कहा है–

त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् । ।

–8.64.3

''हे ऐश्वर्य सम्पन्न जगदीश्वर (इन्द्र) तू उत्पन्न पदार्थों का ईश्वर है, और अनुत्पन्न नित्य जीव तथा प्रकृति का अथवा आगे उत्पन्न होने

वालों का भी ईश्वर है। तू ही लोकों का राजा है।'' इसी प्रकार यजुर्वेद में परमात्मा को दो पग वाले और चार पग वाले सबका ईश्वर कहा है।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक हो जाता है कि ईश्वर के सर्वव्यापक, सर्वेश्वर आदि गुणों का वेद में स्पष्ट निरुपण किया गया है। यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि ये सब गुण ईश्वर के ही क्यों कहे गये, जब कि ये सब गुण प्राकृतिक शक्तियों एवं जीव के लिए भी कहे जा सकते हैं। इस प्रश्न का उत्तर स्वामी दयानन्द इस प्रकार देते हैं–

''विराटादि नामों के जो प्रसिद्ध प्रमाणसिद्ध परमेश्वर और विराट आदि नाम है उनका परित्याग करके असम्भव और अनुपस्थित देवादि के ग्रहण में परिश्रम करते है, इससे कोई भी प्रमाण या युक्ति नहीं।'' इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहाँ जिसका ग्रहण करना (प्रकरणानुसार) उचित हो वहाँ उसी का ग्रहण करना चाहिए।'' जैसे– हिरण्य का अर्थ सोना भी होता है और ईश्वर भी, प्रजापति राजा को भी कहा जा सकता है और ईश्वर को भी, तथा विराट ईश्वर का भी नाम है और ब्रह्माण्ड का भी। अतः इन नामों के प्रयुक्त करने में प्रकरण का ध्यान रखना अनिवार्य होता है। जैसा कि स्वामी दयानन्द आगे लिखते हैं–

''जो आप ऐसा कहे कि जिसका जहाँ प्रकरण है, वहाँ उसी का ग्रहण करना योग्य है, जैसे किसी ने किसी से कहा है कि 'हे भृत्य! त्वम् सैन्धवमानय' अर्थात् तू सैन्धव को ले आ तब उसको समय अर्थात् प्रकरण का विचार करना अवश्य है, क्योंकि सैन्धव नाम दो पदार्थों का है, एक घोड़े और दूसरे लवण का। जो स्वामी का गमन समय हो तो घोड़े और भोजनकाल हो तो लवण को ले आना उचित है। और जो गमन समय में लवण और भोजन समय में घोड़े को ले आवे तो उसका

स्वामी उस पर क्रुद्ध होकर कहेगा कि तू निर्बुद्धि पुरुष है । गमन समय में लवण ओर भोजन काल में घोड़े को लाने का क्या प्रयोजन था? तू प्रकरणवित् नहीं है । नहीं तो जिस समय में जिसको लाना चाहिए था, उसी को लाता । जो तुझको प्रकरण का विचार करना आवश्यक था वह तूने नहीं किया । इससे तू मूर्ख है, मेरे पास से चला जा । इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहाँ जिसका ग्रहण करना उचित हो वहाँ उसी अर्थ का ग्रहण करना चाहिए । तो ऐसा ही हम और आप सब लोगों को मानना और करना भी चाहिए ।''

इस विषय में सभी को यह ध्यान रखना चाहिए कि जहाँ कहीं भी स्तुति, प्रार्थना, उपासना, सर्वज्ञ, व्यापक, शुद्ध, सनातन और सृष्टिकर्ता आदि विशेषण इन विराट आदि नामों के साथ लिखें हों वही-वही ये नाम ईश्वर अर्थ में समझने चाहिए और जहाँ-जहाँ उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, अल्पज्ञ, जड़, दृश्य आदि विशेषण इनके साथ लिखें हों वहीं-वहीं विराट आदि नामों से परमात्मा का ग्रहण न करके सांसारिक पदार्थों का अर्थ ग्रहण करना चाहिए । इससे स्पष्ट है कि हालाँकि वेद में संसारी पदार्थों के लिए भी विराट, हिरण्य आदि नामों को प्रयुक्त किया गया है और ईश्वर के लिए भी । अतः इन नामों का अर्थ प्रकरण के अनुसार ही ग्रहण करना चाहिए । ''इस विषय में अधिक विवेचना ईश्वर के निज नाम के विषय में आगे की जायेगी ।''

13. ईश्वर सर्वव्यापक है

स्वामी दयानन्द द्वारा वेद के आधार पर प्रतिपादित ईश्वर के स्वरूप के विषय में सबसे अधिक जटिल समस्या ईश्वर को सर्वव्यापक मानने से उत्पन्न होती है । क्योंकि एक ओर स्वामी दयानन्द ईश्वर को सर्वव्यापक मानते हैं और दूसरी और त्रैतवाद का प्रतिपादन करते हैं ।

अर्थात् ईश्वर , जीव और प्रकृति इन तीनों को अनादि मानते हैं । तब इस विषय में कुछ विद्वानों द्वारा जो प्रश्न किए जाते हैं उनका विवेचन निम्न प्रकार प्रस्तुत है–

प्रश्न 17. ईश्वर असीम है अथवा ससीम ?

उत्तर – ईश्वर असीम है ।

जैसे गोयन्दक जी लिखते हैं–

भगवान् ने अर्जुन को जो रूप दिखलाया था, वह भी विश्वरूप था । और वेद वर्णित भूर्भुवः स्वः रूप यह ब्रह्माण्ड भी भगवान् का विश्वरूप है । दोनों एक ही बात है । सारा विश्व भगवान् का स्वरूप विराजमान है । –ज्ञानयोग का तत्त्व (भगवान् क्या है ?) पृ० 177

प्रश्न 18. जब ईश्वर असीम है तब जीव और प्रकृति उससे भिन्न है अथवा अभिन्न ?

उत्तर – जीव और प्रकृति ईश्वर से भिन्न स्वतंत्र हैं ।

प्रश्न – तब तो ईश्वर असीम न रहेगा इसका कारण यह है कि स्वतंत्र और भिन्न पदार्थों के रहते वह असीम कैसे हुआ ? क्योंकि भिन्नता ही सीमा बद्धता है, जब तक दो पदार्थों के मध्य कोई सीमा रेखा नहीं होती तब तक उनको भिन्न भी नहीं माना जाता ।

उत्तर – इस विषय में सर्वप्रथम तो यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि सीमा से आपका क्या अभिप्राय है ? क्योंकि आपने जो सीमा की धारणा व्यक्त की है वह देश और काल के आधार पर ही की । तब आप स्वयं यह विचार करें कि आप जिस देश और काल के आधार पर भिन्नता मानते हैं उस देश और काल का आधार क्या है ? वस्तुतः देश और काल दोनों ही प्रकृति से अभिन्न है जिनका आधार ईश्वर है । जब आप देश और काल की ही सीमा को प्रकृति से भिन्न करके सीमाबद्ध नहीं कर सकते तब देश और काल की ही सीमा को प्रकृति से भिन्न करके सीमाबद्ध नहीं कर सकते तब देश और काल के आधारभूत

पदार्थों की भिन्नता को इनके आधार पर कैसे सिद्ध कर सकते हो? यह एक गम्भीर दार्शनिक तथ्य है अतः इस विषय में इतना ही समझना चाहिए कि ईश्वर जीव और प्रकृति का भेद देश कालगत नहीं है वरन् इनकी शक्तियों एवं गुणों के आधार पर है और गुणों की सीमाबद्धता से सर्वव्यापकता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

प्रश्न 19. इस तथ्य को अधिक स्पष्ट कीजिए।

उत्तर – स्वामी दयानन्द के ईश्वर को सर्वव्यापक मानने एवं त्रैतवाद का प्रतिपादन करने में कोई विरोध नहीं है क्योंकि सर्वव्यापक नाम ही त्रैतवाद का द्योतक है। क्योंकि यदि ईश्वर से पृथक् कोई अन्य जीवादि न होते तब सर्वव्यापक कहने का ही कोई औचित्य नहीं था क्योंकि व्यापकत्व सदैव व्यापक, व्याप्य की अपेक्षा रखता है। अतः जब तक दो पदार्थों में व्यापक-व्याप्य संबंध न हो तब व्यापकत्व का कोई अर्थ नहीं है। दूसरे शब्दों में यदि ईश्वर व्यापक और जीव और प्रकृति व्याप्य न हों तो उसे व्यापक कैसे कहा जा सकता है? अतः ईश्वर को सर्वव्यापक कहने में त्रैतवाद का प्रतिपादन होता है न कि खण्डन। स्वामी दयानन्द ने ईश्वर के सर्वव्यापक स्वरूप को निरूपित करते हुए लिखा है।

प्रश्न 20. ईश्वर व्यापक है अथवा किसी देश विशेष में रहता है?

उत्तर – व्यापक है, क्योंकि जो एक देश में रहता तो सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता सबका स्रष्टा, सबका धर्ता और प्रलयकर्ता नहीं हो सकता अप्राप्त देश में कर्ता की क्रिया असम्भव है। वेद में ऐसे मंत्रों की भरमार है जिनमें ईश्वर को सर्वव्यापक कहा गया है। जैसे– यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में कहा है कि समस्त चराचर जगत् में ईश्वर ओत-प्रोत हो रहा है। अर्थात् ईश्वर सर्वव्यापक है। इस विषय में विद्वानों में कोई विरोध नहीं है इसलिए इसकी अधिक विवेचना करना उपयुक्त नहीं है।

सृष्टिकर्ता – स्वामी दयानन्द ने ईश्वर के अस्तित्व की सिद्धि में सबसे अधिक पुष्ट प्रमाण उसका सृष्टि कर्तृत्व माना है। क्योंकि इस सृष्टि की रचना का सामर्थ्य स्वयं जीव में नहीं है ऐसा दर्शनकारों का भी मत है तथा प्रकृति को क्योंकि जड़ माना जाता है अतः वह स्वयं विकसित होने में असमर्थ है। अतः ईश्वर ने जीव के भोगार्थ प्रकृति के द्वारा सृष्टि रचना की। वेद की इस धारणा को वेदान्त दर्शन ने ईश्वर की सिद्धि में दर्शाया।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना भी उपयुक्त होगा कि सृष्टि ईश्वर ने अपने से पृथक् प्रकृति (सत्व, रज, तम, साम्यावस्था) के द्वारा उत्पन्न की वह स्वयं प्रकृति रूप नहीं हुआ जैसा कि शंकराचार्य ने माना कि जैसे मकड़ी अपने में से ही जाल निकालती है, ऐसे ही ब्रह्म ने अपने में से सृष्टि रचना की। उन्होंने अपने मत में उपनिषद् के वचनों को प्रस्तुत किया जैसे– **सदेव सोम्येदमग्र आसीत्–असद्वा इतमग्रासीत्–तदैक्षत बहुः स्यां प्रचायेयेति। सोऽकामयत बहुः स्यां प्रजायेयेति।** अर्थात् यह जगत् सृष्टि के पूर्व सत्-असत् था– यही इन समस्त उपनिषद् वचनों के विषय में आदि शंकराचार्य ने अपने ब्रह्म के अद्वैतवाद की स्थापना करते हुए जगत् को ब्रह्म की माया रूपी शक्ति से उत्पन्न प्रतिपादित किया। किन्तु इन समस्त उपनिषद् वचनों के विषय में स्वामी दयानन्द लिखते हैं कि इन उपनिषद् वचनों का यदि वह अर्थ स्वीकार करें तो स्वयं उपनिषदों में ही उपलब्ध उन वाक्यों में जिनमें प्रकृति को नित्य माना है, परस्पर विरोध होगा। अतः इनका यह आशय नहीं है। इस विषय में विस्तार से विवेचन तो सृष्टि विषय में आगे किया जायेगा। यहाँ तो इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि ब्रह्म और प्रकृति की एकता का सिद्धान्त वेदों, उपनिषदों एवं दर्शनों की मूल भावना के विरुद्ध होने से मान्य नहीं हो सकता। अतः ईश्वर ही सृष्टिकर्ता है, यह मान्यता सर्वमान्य होने से उपयुक्त है। जैसा कि स्वामी दयानन्द ने भी माना है।

ब्रह्म के विषय में विभिन्न वादों की समीक्षा

वेदों में ब्रह्म के विषय को लेकर पश्चिमी एवं आधुनिक कुछ भारतीय विद्वानों में अनेक मत प्रचलित हैं। पश्चिमी विद्वानों ने जहाँ वेदों में बहुदेववाद को सिद्ध करने की चेष्टा कीं, वही कुछ भारतीय विद्वानों ने उपनिषदों को ही वेद स्वीकार करके उनके आधार पर, अद्वैतवाद, सर्वेश्वरवाद को ही वेदों में सिद्ध करने का प्रयास किया। किन्तु स्वामी दयानन्द ने इन सब मतों का खण्डन करते हुए एकेश्वरवाद को ही वेदों का मूलाधार माना हैं उनके अनुसार चारों वेदों में एक ही सर्वशक्तिमान् ब्रह्म की उपासना का वेदों में विधान है। अतः वेदों के संबंध में प्रचलित इन समस्त वादों की समीक्षा करना इस विषय को स्पष्ट करने के लिए महत्वपूर्ण होगा।

एकेश्वरवाद

स्वामी दयानन्द ने अपने वेदभाष्य में सर्वत्र ही एक ईश्वर ही को 'पूज्य' माना है। वेदों का अवगाहन करने पर हम यह स्पष्ट पाते हैं कि वेदों में ईश्वर ही देवाधिदेव और एकमात्र पूजनीय है क्योंकि ईश्वर को अनेक नामों से सम्बोधित किया गया है। इसी कारण वेदों में बहुदेववाद का भ्रम होता है, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। इसका कारण यह है कि अग्नि, इन्द्र, वायु, आदित्य आदि नाम द्विर्थक है। जिन मंत्रों में इनका अर्थ प्राकृतिक शक्तियों के रूप में करते हैं, वहाँ इनको 'पूजनीय' या 'उपास्य' नहीं कहा गया है किन्तु जहाँ इन नामों के लिए उपासना का विधान है, वहाँ ये सब नाम एक ही ईश्वर की विभिन्न शक्तियों के द्योतक हैं। इस विषय में स्वयं वेद, ब्राह्मण ग्रंथ, निरुक्त आदि समस्त ग्रंथ इस तथ्य का अनुमोदन करते है। वेदों में स्पष्ट कहा गया है कि ईश्वर का ही नाम – अग्नि, वायु, आदित्य व चन्द्रमा है।

ये सब ईश्वर के विशेषण है, क्योंकि इन्द्र, मित्र-वरुण, सूर्यादि

अनेक विशेषणों से युक्त वही एक ईश्वर अनेक नामों से जाना जाता है। ऐसा वेदों में स्पष्ट कहा गया है। वेदों में आये इन नामों की व्याख्या करते हुए शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि अग्नि ही ब्रह्म है। ब्रह्म ही आदित्य है। इसी प्रकार वायु तथा चन्द्रमा ब्रह्मवाची है। इन पुष्ट प्रमाणों के द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि वेदों में ईश्वर को अनेक नामों से सम्बोधित किया गया है। और वे एक ही ईश्वर के विशेषण है। यहाँ यह भ्रान्ति उपस्थित हो जाती है कि ये सब नाम भौतिक पदार्थों के भी हैं, तब यह कैसे जाना जायेगा कि कहाँ ये ईश्वरवाची है और कहाँ प्राकृतिक शक्तियों के लिए प्रयुक्त हुए हैं? इस शंका का समाधान करते हुए स्वामी दयानन्द लिखते हैं कि जहाँ-जहाँ स्तुति, प्रार्थना, उपासना, सर्वज्ञ, व्यापक, शुद्ध, सनातन सृष्टिकर्ता आदि विशेषण लिखे हैं, वहीं-वहीं इन नामों से परमेश्वर का ग्रहण होता है।

जहाँ-जहाँ उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, अल्पज्ञ, जड़, दृश्य आदि विशेषण भी लिखे हों वहाँ-वहाँ परमेश्वर का ग्रहण नहीं होता। अतः वेदों के वास्तविक स्वरूप को जानने के लिए यह आवश्यक है कि पक्षपातरहित होकर यह जाने की निरुक्तकार आदि समस्त ग्रंथ वेद मंत्रों के त्रिविधार्थ को स्वीकार करते हैं। अतः वेदों में सर्वत्र ही एक ही ब्रह्म को विभिन्न नामों से वर्णित किया गया है जो प्रस्तुत वेद मंत्रों से स्पष्ट है– ऋग्वेद में कहा गया है कि ईश्वर एक ही है, तू उसी की स्तुति कर। इसी प्रकार अन्य अनेक मंत्रों में ईश्वर को एक बताते हुए उसे ही पूज्य कहा तथा साथ ही साथ यह भी कहा है कि ईश्वर से भिन्न अन्यों की प्रजा दुःख का हेतु है। वेद की इसी मान्यता को स्पष्ट करते हुए स्वामी दयानन्द ने लिखा है कि जो दूसरे में ईश्वर बुद्धि करके उपासना करता है, वह कुछ भी नहीं जानता। क्योंकि वेद स्वयं अनेकेश्वरवाद का निषेध करता हुआ स्पष्ट कहता है कि ईश्वर एक ही है, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10 अर्थात् अनेक नहीं है। इस प्रकार

हम देखते हैं कि वेदों में सर्वत्र एक ईश्वर की ही मान्यता का प्रतिपादन है तथा उसी एक ईश्वर की उपासना करने का निर्देश है ।

वेदों में अनेकेश्वरवाद की मौलिक भूत का कारण पश्चिमी विद्वानों द्वारा देव शब्द को केवल मात्र ईश्वर अर्थ में ग्रहण करना है । वे विद्वान् सर्वत्र 'देव' शब्द का अर्थ ईश्वर करते चले गए, जिससे यह भ्रान्तिपूर्ण विचार स्थापित हुआ कि वेदों में 'अनेकश्वरवाद्' का प्रतिपादन हुआ है, किन्तु वे विद्वान् उन वेदमंत्रों का भाष्य करने में भ्रमित हो गए जिनमें स्पष्ट रूप से एक ही ईश्वर को उपासनीय कहा तथा उसके अनेक होने का निषेध किया । अतः वेदों के वास्तविक मन्तव्य को स्पष्ट करने के लिए इन विभिन्न वादों की समीक्षा महत्वपूर्ण होगी । इसमें बहुदेवतावाद की समीक्षा करना आवश्यक है ।

दयानन्द द्वारा वेदों में बहुदेवतावाद का खण्डन

पश्चिमी दार्शनिकों द्वारा प्रतिपादित वेद में बहुदेवतावाद का सामान्यतया यह अभिप्रायः समझा गया कि वेदों में अनेक देवता (ईश्वरों की पूजा का विधान) है । इस विचारधारा के पोषक भारतीय और पश्चिमी विद्वानों ने देव शब्द का अर्थ ईश्वर किया है । इस अर्थ को लेकर अनेक विद्वानों ने वेदों में अद्भुत देवनागरी का निर्माण कर रखा है । इन विद्वानों ने वैदिक देवताओं को ग्रीक गाथाशास्त्र अपेणो आदि देवताओं से मिलाकर वैदिक गाथाशास्त्र को बनाने की चेष्टा की है । अतः यहाँ वैदिक देवतावाद का स्वरूप स्पष्ट करना उपयुक्त एवं महत्वपूर्ण होगा । चारों वेदों में देव शब्द अनेक मंत्रों में आया है और पश्चिमी विद्वानों ने प्रायः उनके अर्थ ईश्वर के रूप में किए हैं, इससे भारी भूल यह हुई कि देव शब्द का 'ईश्वर' अर्थ करने से उसे उपासनीय बना दिया गया है, जिससे कि वेदों के उन मंत्रों का इन मंत्रों के साथ तालमेल अस्पष्ट हो गया । यही कारण है कि मैक्समूलर ने बहुदेवतावाद को एक नया नाम दिया हीनोथियिज्म । इसका अभिप्राय

है कि अनेक देवों में से प्रत्येक को ही उस समय, जबकि उसकी स्तुति की जा रही है, कवि सबसे बड़ा और सर्वशक्तिमान् समझता है, इस प्रकार प्रत्येक देवता की स्वतंत्र रूप से पूजा हीनोथियिज्म है। इस भ्रान्ति का कारण 'देव' शब्द का यथार्थ अर्थ न जानना है।

वेदों में देवता शब्द का अर्थ

वेदों में देवता शब्द का अनेक प्रकार से प्रयोग हुआ है जैसे–प्रत्येक मंत्र का एक देवता है। इस देवता के विषय में निरुक्ताकार ने स्पष्ट लिखा है कि 'देवता उसको कहते हैं, जिसके गुणों का कथन किया जाये अर्थात् जो संज्ञा जिन-जिन मंत्रों में जिस-जिस अर्थ की होती है, उन-उन मंत्रों का नाम वही देवता होता है। इस प्रकार मंत्रों में प्रतिपादित विषय का नाम देवता कहा है।' इस विषय को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि मंत्रों के विषय तीन प्रकार के हैं–

(1) परोक्ष, (2) प्रत्यक्ष, (3) आध्यात्मिक। इस प्रकार सर्वत्र ही देवता शब्द से ईश्वर अर्थ या प्राकृतिक शक्तियों को 'ईश्वर' (उपास्य) कहना अनुचित ही है। इसके अतिरिक्त 'देवता' शब्द की निरुक्ति करते हुए यास्काचार्य लिखते हैं – **देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा, द्युस्थानो भवतीति वा।** दान देने से, प्रकाश करने से, पालनादि करने से तथा द्युस्थानीय होने से देव कहाते हैं। इनके अतिरिक्त व्याकरण के आधार पर दिवुधातु के दश अर्थ स्वीकार्य हैं।

'देव' शब्द के ये समस्त अर्थ मूर्त्त ओर अमूर्त्त दोनों प्रकार की सत्ताओं में घटित होते हैं। स्वामी दयानन्द ने वेदों के परिप्रेक्ष्य में 'देव' शब्द का दो रूपों में प्रयोग किया, एक व्यावहारिक रूप में तथा दूसरा पारमार्थिक रूप में उनके अनुसार, ''दिवु धातु के जो दस अर्थ हैं, वे व्यवहार और यथार्थ दोनों अर्थों में घटते हैं क्योंकि इनके दोनों अर्थ की योजना वेदों में अच्छी प्रकार से की है। इस प्रकार वेदों में अनेक देवों

का प्रतिपादन है, यह यथार्थ है किन्तु वे सभी देव उपास्य नहीं है, जब प्रश्न उपासना का आता है, तब वहाँ एक ही देवाधिदेव परमेश्वर की उपासना का विधान है। इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए निरुक्ताकार लिखते हैं –''एक ही परमेश्वर की उपासना वेदान्त है।''

सायण और उब्बट के अनुसार 'देव' शब्द का अभिप्राय

मध्यकालीन वेद भाष्यकार सायण तथा महिधर ने भी 'देव' शब्द के यजमान् ऋत्विज् आदि अनेक अर्थ किए हैं, जिससे यह स्पष्ट है कि 'देव' शब्द का 'ईश्वर' के अतिरिक्त भी अर्थ करना उनको मान्य था। यजुर्वेद के एक मंत्र के भाष्य में सायण ने 'देवा' शब्द का अर्थ ऋत्विज किया। इसी प्रकार एक मंत्र का अर्थ ऋत्विज और यजमान किया। इसी प्रकार महिधर और उब्बट ने भी देव शब्द का यजमान और ऋत्विज अर्थ किया। इसका अभिप्राय यह है कि 'देव' शब्द का अर्थ सर्वथा ईश्वर ही होगा, ऐसा वैदिक परम्परा में किसी भी विद्वान् ने नहीं कहा। निरुक्ताकार ने जिसको वैदिक शब्दकोष की कुँजी कहा जाता है, इसीलिए 'देव' शब्द की निरुक्ति करते हुए उसके विभिन्न अर्थों का प्रतिपादन किया है जिससे कि देवों में उन मंत्रों का जिनमें केवल एक ही ब्रह्म का निरूपण है, आशय स्पष्ट होता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वेदों में 'देव' शब्द का प्रयोग भौतिक शक्तियों, सूर्य, चन्द्र, मरुत आदि के लिए भी हुआ है और ईश्वर के लिए भी हुआ है किन्तु इसके साथ यह भी स्पष्ट है कि चारों वेदों में भौतिक शक्तियों को कहीं पर भी 'उपासनीय' नहीं कहा है, पूजनीय देव केवल ईश्वर ही है। अतः मैक्समूलर द्वारा कल्पित 'हीनोथियिज्म' के वेदों में कहीं पर भी दर्शन नहीं होते। इस विषय में अरविन्द के विचार भी महत्वपूर्ण है, वे लिखते हैं कि अग्नि, इन्द्र, यम, मातरिश्वा आदि एक ही ईश्वर की विभिन्न शक्तियों के नाम है। इस विषय में मैक्समूलर की 'हीनोथियिज्म' की कल्पना न केवल निराधार है, अपितु वैदिक

ऋषियों पर मूढ़ता का दोषारोपण करने के कारण अमान्य भी है। श्री अरविन्द के विचार इस रूप में यथार्थ हैं क्योंकि स्वयं वेद ही घोषणा कर रहा है कि एक सत् स्वरूप परमेश्वर के अग्नि, मरुत, मातरिश्वा आदि अनेक नाम हैं और वही एक उपासनीय है।

उस परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई उपासनीय नहीं है। वेदों में एकेश्वरवाद के प्रतिपादक मंत्रों की भरमार है। इसी कारण पश्चात् में मैक्समूलर ने एकेश्वरवाद का ही वेदों में समर्थन करते हुए लिखा है कि वेदों में इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, मातरिश्वा, प्रजापति आदि शब्दों द्वारा वस्तुतः एक ही ईश्वर का प्रतिपादन किया गया है जो अनन्त और निर्विकार है। इसके लिए कुछ अन्य पश्चिमी विद्वानों की सम्मितियाँ भी उल्लेखनीय हैं–

कौंट वियोनर्सटीर्ना नामक पश्चिमी विद्वान् लिखते हैं कि 'वेद' एकेश्वरवाद का ही प्रतिपादन करते हैं जो ईश्वर सर्वशक्तिमान् अनन्त, नित्य, स्वयम्भू और जगत् का प्रकाशक और स्वामी है। इस प्रकार अनेक निष्पक्ष पश्चिमी विद्वानों तथा स्वयं मैक्समूलर महोदय को अन्त में यह स्वीकार करने को बाध्य होना पड़ा कि वेदों में अनेक देवों की उपासना का विधान नहीं है।

वैदिक देवतावाद

अब इस विषय को स्पष्ट करने के लिए यह भी आवश्यक है कि देवाधिदेव ईश्वर के अतिरिक्त अन्य देवों का वेदों में क्या स्वरूप प्रतिपादित है। जैसा कि स्वामी दयानन्द ने यह माना कि वेदों में व्यावहारिक और पारमार्थिक दोनों प्रकार के देवों का वर्णन है, व्यावहारिक देवों में भी दो प्रकार के देवताओं का वर्णन है। एक जड़ देवता तथा दूसरे चेतन देवता। स्वामी दयानंद जी लिखते हैं – इस देवता विषय में दो प्रकार के भेद हैं। एक मूर्तिमान और दूसरा

अमूर्तिमान । जैसे माता-पिता, आचार्य, अतिथि ये चार मूर्तिमान देवता है और पाँचवीं परब्रह्म अमूर्तिमान् । जैसे माता-पिता, आचार्य, अतिथि ये चार मूर्तिमान देवता हैं और पांचवां परब्रह्म अमूर्तिमान है ।

व्यवहार के अमूर्तिमान या जड़ देवताओं में 33 देवताओं का ऋग्वेद में वर्णन है । यजुर्वेद में भी 30 देवों का वर्णन है किन्तु जिससे मनुष्यों को भ्रम न हो जाये इसलिए इन देवों के अतिरिक्त पूजनीय देव ईश्वर को ही माना । इसी प्रकार अथर्ववेद में भी 33 देवों का वर्णन है । ये 33 देवता प्राकृतिक शक्तियाँ हैं जैसे– 8 वसु, 11 रुद्र, 12 आदित्य, 1 इन्द्र और 1 प्रजापति । पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र सब सृष्टि का निवास स्थान होने से 8 वसु कहलाते हैं । प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान,नाग, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीवात्मा ये 11 रुद्र कहलाते हैं क्योंकि जब ये शरीर को छोड़ते हैं तो रुदन कराने वाले होते हैं । संवत्सर के 12 महीने आदित्य इसलिये हैं कि ये सब की आयु को लेते जाते हैं । बिजली का नाम इन्द्र इस हेतु से है कि परम ऐश्वर्य का हेतु है । यज्ञ को प्रजापति कहने का तात्पर्य यह है कि जिससे वायु, वृष्टि, जल, औषधि की शुद्धि, विद्वानों का सत्कार और नाना प्रकार की शिल्प विद्या से प्रजा का पालन होता है ।

ये 33 पूर्वोक्त गुणों के योग से देव कहलाते हैं । जो इन शास्त्रों को देखते तो वेदों में अनेक ईश्वर मानने के भ्रमजाल में क्योंकर फंसते अर्थात् किसी के बहकावे में न आते । ये देवता इसलिए कहलाते हैं क्योंकि देवता शब्द के जो अर्थ व्याकरण और निरुक्त के अनुसार होते हैं, वे सब इनमें घटते हैं किन्तु ये सब व्यवहार मात्र की सिद्धि के लिए है, इनमें से एक भी उपासनीय नहीं है । क्योंकि ब्राह्मणग्रंथ स्पष्ट रूप से एक ईश्वर को ही उपासनीय मानते हैं, साथ ही यह भी चेतावनी देते हैं कि 'जो कोई कहे कि परमेश्वर को छोड़ के दूसरे में भी ईश्वर बुद्धि

से प्रेमभक्ति करनी चाहिए, वह कुछ भी नहीं जानता इसलिए वह विद्वानों के बीच पशु के समान है। अतः एक परमेश्वर ब्रह्म ही उपासनीय देव है।'

अद्वैतवाद पर विचार

दार्शनिक जगत् में अद्वैतवाद के नाम से प्रचलित सिद्धान्त के प्रतिपादक आचार्य शंकर माने जाते हैं। उन्होंने उपनिषदों को अपना केन्द्र बनाकर अद्वैतवाद की स्थापना की। अद्वैतवाद का मूल सिद्धान्त है कि ब्रह्म ही एक मात्र सत्य है तथा दृश्यमान जगत् मिथ्या या असत्य है। जीव और जगत् के विषय में उनकी मान्यता है कि जीव भी एक रूप में ब्रह्म ही है तथा ब्रह्म ही एकमात्र निरपेक्ष सत्ता है। उसके अतिरिक्त जीव और दृश्यमान् जगत् ब्रह्म की अपेक्षा से है। अतः इनकी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है। इस प्रकार अद्वैतवाद के अनुसार हम जो भी कुछ जीव व जगत् के विषय में विचार करते हैं, वह सब ब्रह्म के ही विषय में उसके किसी पक्ष का विचार होता है। क्योंकि आदिशंकराचार्य के अनुसार ब्रह्म को अलग रखकर किसी भी वस्तु को परिभाषित नहीं किया जा सकता।

अतः आदिशंकराचार्य के अनुसार जगत्, जीव, जगदीश सभी किसी न किसी प्रकार से ब्रह्म का परिवर्तित स्वरूप है। वही ब्रह्म अविद्योपाधित होकर जीव तथा मायोपाधित होकर ईश्वर कहलाता है तथा यह जगत् मायोपाधित ब्रह्म का विवर्त है। इस प्रकार आदिशंकराचार्य का दर्शन ब्रह्मवादी दर्शन है जिसमें ब्रह्म के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया गया है। अतः वेदों में ब्रह्म के स्वरूप के परिप्रेक्ष्य में यह जानना भी आवश्यक है कि क्या वेदों में इस प्रकार के अद्वैतवाद की विचारधारा उपलब्ध है? इसके लिए आदिशंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित ब्रह्मवाद की विचारधारा की समीक्षा महत्वपूर्ण होगी।

आदिशंकराचार्य का ब्रह्म-निरपेक्ष सत्—आदिशंकराचार्य के अनुसार केवल मात्र 'ब्रह्म' ही सत् है। 'सत्' की परिभाषा देते हुए

आदिशंकराचार्य कहते हैं जिसके विषय में हमारी बुद्धि परिवर्तित न हो, वह सत् है। इस रूप में आदिशंकराचार्य की मान्यता है कि दृश्यमान् जगत् और जीव दोनों ही सत् के स्वरूप की परिधि में न आने से असत् है अर्थात् ब्रह्म से भिन्न जो भी है, सब या तो अनिर्वचनीय है या असत् है। इस प्रकार जीव और जगत् का अस्तित्व ब्रह्म सापेक्ष है तथा केवल मात्र ब्रह्म ही निरपेक्ष है। आदिशंकराचार्य के अनुसार किसी वस्तु का दिखाई देना मात्र सत् का माप नहीं हो सकता क्योंकि यदि ऐसा होता हो मृगमरीचिका का जल और रस्सी का सर्प कभी असत् न माना जा सकता। इसी प्रकार जो कुछ चमकता है वह सब स्वर्ण नहीं होता, सीप के टुकड़े कभी-कभी चाँदी जैसे चमकते हैं और एक चन्द्रमा किन्हीं कारणों से दो दिखाई देने लगता है।

इस प्रकार आदिशंकराचार्य के दर्शन में जब सत् या असत् को पारिभाषित किया गया है, तब वे शास्त्रसंगत हैं किन्तु जब उन परिभाषाओं को जीव और प्रकृति के ऊपर आरोपित किया गया है तो उनका मत वैदिक मान्यताओं से दूर चला गया है क्योंकि जब आदिशंकराचार्य सत् की परिभाषा देते हैं, तब वे कहते हैं, जिसके विषय में बुद्धि परिवर्तित न हो, वह सत् है किन्तु जगत् के मिथ्यात्व को सिद्ध करने में वह यह स्पष्ट नहीं कर पाये कि उस परिस्थिति में किसकी बुद्धि का परिवर्तन स्वीकार किया जाए, जीव की या ब्रह्म की? क्योंकि यदि जीव की बुद्धि का परिवर्तन माने तो जीव तो स्वयं उनके अनुसार एक भ्रान्ति है और यदि ईश्वर की बुद्धि का परिवर्तन माने तो उसका शुद्ध सर्वज्ञ स्वरूप खण्डित होता है, इस प्रकार शंकराचार्य स्वयं अपने ही तर्कों के जाल में ऐसे फंसे कि उनके शिष्यों को इसमें से निकलने के लिए नवीन वादों का प्रतिपादन करना पड़ा।

आदिशंकराचार्य के अद्वैतवादी मत को वेदों के परिप्रेक्ष्य में देखने से यह स्पष्ट होता है कि आदिशंकराचार्य और वैदिक मान्यताओं

में मौलिक आदिशंकराचार्य का अद्वैत की विशिष्ट परिभाषा प्रस्तुत करना है। उन्होंने अद्वैत से यही अर्थ किया कि केवल ब्रह्म ही सत् है। उसके अतिरिक्त सब मिथ्या है, जबकि स्वामी दयानन्द ने वैदिक वाङ्मय का अवलोकन कर, इस त्रुटि को दूर कर यह कहा कि अद्वैत से तात्पर्य यह है कि ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कोई उसके समान नहीं है। इस अर्थ में वह अद्वितीय है। अतः इन दोनों विचारधाराओं का अवलोकन करना इस विषय को स्पष्ट करने के लिए महत्वपूर्ण होगा।

अद्वैतवाद और स्वामी दयानन्द की वैदिक धारणा

अद्वैतवाद के विषय में आदिशंकराचार्य के विचार जान लेने के पश्चात् अब स्वामी दयानन्द का इस विषय में क्या मत है, यह जानना भी आवश्यक है? यहाँ यह विशेष उल्लेखनीय है कि आदिशंकराचार्य ने अपने अद्वैतवाद की स्थापना उपनिषदों के आधार पर की। उन्होंने चारों वेदों में से कोई भी मंत्र अपनी मान्यता की सिद्धि में प्रस्तुत नहीं किया। जबकि स्वामी दयानन्द ने वेद-मंत्रों के आधार पर इस विचारधारा का खण्डन किया। स्वामी दयानन्द ने अद्वैत को ब्रह्म का विशेषण स्वीकार किया। इस प्रकार अद्वैत जीव और जगत् से उसकी पृथकता दर्शाने वाला ब्रह्म का विशेषण माना। इस प्रकार अद्वैत से तात्पर्य ईश्वर के एक ही होने से है क्योंकि वह एक ही है तथा उसके समान भी कोई नहीं, इसलिए वह अद्वितीय है। जैसे कोई कहे कि इस नगर में अद्वितीय धनी राम और इस सेना में अद्वितीय शूरवीर श्याम है, इससे यही सिद्ध होता है कि राम के सदृश्य इस नगर में दूसरा धनी और श्याम के समान दूसरा शूरवीर नहीं।

इसी प्रकार ईश्वर के समान गुणों वाले जीव और प्रकृति नहीं किन्तु इससे उनका निषेध नहीं होता अपितु ईश्वर के सदृश उनकी न्यूनता का संकेत मिलता है। वेदों में भी स्पष्ट कहा कि 'जड़ पदार्थ पृथिवी लोक, द्युलोक, अन्तरिक्ष लोक जिसका अन्त नहीं पा सकते, न

तो कोई उससे श्रेष्ठ है और न कोई ज्येष्ठ तथा न कोई उनके समान है। ऋग्वेद में भी ईश्वर के गुणों की व्याख्या करते हुए मंत्र कहता है कि द्युलोक और पृथिवी पर उसके सदृश कोई नहीं हुआ और न होगा। वेदों में इस प्रकार से ईश्वर के अद्वितीय स्वरूप का निरूपण किया गया है, न कि आदिशंकराचार्य द्वारा स्थापित अद्वैतवाद का। क्योंकि वेदों में एक ईश्वर से भिन्न जीव और प्रकृति के अस्तित्व को सत्य रूप में स्वीकार किया गया है। ऋग्वेद में जीव और परमेश्वर की भिन्नता को दर्शाते हुए मंत्र में बताया कि जीव और परमात्मा रूपी दो पक्षी चेतन्य होने से सखा है और साथी हैं। वे दोनों प्रकृति रूप वृक्ष पर मानों स्थित हैं, उनमें से एक कर्मफल का भोग करता है तथा दूसरा द्रष्टा बनकर देखता है।

इस मंत्र में उपमा द्वारा जीव, परमेश्वर भेद इतनी स्पष्टता से वर्णित है कि लाख प्रयत्न करने पर भी उसको अलग नहीं किया जा सकता। एक अन्य मंत्र में जीवात्मा को परमेश्वर से भिन्न जीव और प्रकृति के अस्तित्व को सत्य रूप में स्वीकार किया गया है। ऋग्वेद में जीव और परमेश्वर की भिन्नता को दर्शाते हुए कहा कि तुम उस परमेश्वर को नहीं जानते जो इस सब जगत् को बनाने वाला तुमसे भिन्न होता हुआ भी तुम्हारे अन्दर विद्यमान है। अतः यह स्पष्ट है कि वेद मंत्र जीव, जगदीश और जगत् इनके भेद को स्वीकार करते हुए ईश्वर के अतिरिक्त जीव, जगत् के अस्तित्व को भी सत्य मानते हैं तथा इसके साथ ही आदिशंकराचार्य के अद्वैतवादी मत की कहीं पर भी वेद-मंत्रों के द्वारा पुष्टि नहीं होती है।

शंकर मत समीक्षा – स्वामी दयानंद और आदिशंकराचार्य दोनों के मत का अलग-अलग विवेचन करने के पश्चात् अब यह देखना महत्वपूर्ण होगा कि इनमें से कौन-सा सिद्धान्त यथार्थ है तथा वेद और वैदिक साहित्य द्वारा अनुमोदित है? आदिशंकराचार्य के मत की

समीक्षा के लिए उपनिषदों में जीव और ब्रह्म के स्वरूप का अवलोकन करना महत्वपूर्ण होगा जिससे यह स्पष्ट हो सकेगा कि आदिशंकराचार्य के मत में क्या मौलिक त्रुटि रही। उपनिषदों में जीव को ब्रह्म से भिन्न बताने वाले अनेक प्रमाण है। वेदान्त दर्शन के निम्नलिखित सूत्रों में यह भाव स्पष्ट प्रतिध्वनित होता है।

(1) **नेतरोऽनुपपत्तेः** —1.1.16

यदि जीवात्मा आनंदमय होता तो वह विभिन्न योनियों में भटकता और दुःख पाता क्यों भ्रमण करता? अतः जीवात्मा को आनंदमय कहना झूठ है।

(2) **विशेषण भेदव्यपदेशाभ्यां च नेतरी** —1.2.22

इस प्रकरण में जो विशेषण कहे हैं वे ब्रह्म पर ही घटित होते हैं। मुण्डकोपनिषद् में ''पश्यत्स्वि निहितं गुहायां'' अर्थात् वह देखने वालों में निहित है, के अनुसार जीव और ब्रह्म का भेद स्पष्ट है। इस प्रकार जीव या ब्रह्म प्रकृति को जगत् का उत्पत्तिकर्ता नहीं कह सकते। केवल ब्रह्म को ही कह सकता है।।

यह समस्त वाक्य ईश्वर जीव के भेद को दर्शाने में सुस्पष्ट है। इसके विपरीत आदिशंकराचार्य ने जो उपनिषदों के आधार पर अद्वैतवादी मत स्थापित किया उसके अनुसार उन्होंने उपनिषदों में जीव और प्रकृति दोनों को ही ब्रह्म का अंश दर्शाया। उनके आधार वाक्य निम्न प्रकार हैं— **प्रज्ञानं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म, सदैव सोम्येदग्रआसीदेकमेवाद्वितीयं**, जिनका अर्थ आदिशंकराचार्य ने करते हुए अपने अद्वैतवादी सिद्धान्त की स्थापना की। उन्होंने लिखा कि आत्मा और ब्रह्म की एकता का साक्षात्कार व्यर्थ या त्रुटिपूर्ण कहकर अस्वीकार नहीं किया जा सकता। क्योंकि इससे एक तो अज्ञान समाप्त हो जाता है और दूसरे किसी अन्य ज्ञान द्वारा इसका

बोध नहीं होता ।

स्वामी दयानन्द ने शंकराचार्य द्वारा किए उपनिषद् वाक्यों के अद्वैतपरक अर्थों को सही नहीं माना । उन्होंने इन उपनिषद् वाक्यों का अर्थ इस प्रकार किया अहं ब्रह्मास्मि अर्थात् (अहम्) मैं ब्रह्म अर्थात् ब्रह्मस्थ हूँ । यहाँ तात्स्थ्योपाधि है जैसे मञ्चाः क्रोशन्तिः मचान पुकारते हैं । मचान जड़ हैं, उनमें पुकारने की सामर्थ्य नहीं इसलिए मंचस्थ मनुष्य पुकारते हैं, यह अर्थ लिया जाता है। तत्वमसि– 'तदात्मकस्तदन्तर्यामी त्वमसि' उस परमात्मा अन्तर्यामी से तू युक्त है । स्वामी दयानन्द ने उपनिषदों में अन्य स्थान पर आये जीव, परमात्मा संबंध के लिये जहाँ यह प्रयुक्त हुआ, इसके लिए उद्धहरण प्रस्तुत किए । अयमात्मा ब्रह्म – यह अवस्था समाधि अवस्था में योगी ईश्वर के प्रत्यक्ष की है, उस समय योगी कहता है कि मेरे में व्यापक ब्रह्म ही सर्वत्र व्यापक है। इस प्रकार स्वामी दयानन्द ने एक ओर आदिशंकराचार्य द्वारा किए गए अद्वैतपरक अर्थों का यथार्थवादी अर्थात् जीव-ब्रह्म भिन्नत्व सिद्ध किया । दूसरे उपनिषदों में ही स्पष्टतः यथार्थवादी विचारधारा को दर्शाया, जिससे उपनिषदों और वेदों के बीच प्रतीत होने वाला विरोध स्वतः ही समाप्त हो गया ।

सगुण व निर्गुण ब्रह्म – स्वामी दयानन्द ने ईश्वर को सगुण व निर्गुण स्वीकार किया है । उनके अनुसार प्रत्येक पदार्थ सगुण व निर्गुण है इसलिए ईश्वर भी है । अपने-अपने स्वाभाविक गुणों से सहित होने से और दूसरे विरोधी गुणों से रहित होने से सब पदार्थ सगुण और निर्गुण है । कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है, जिसमें केवल सगुणता और निर्गुणता हो । वैसे ही परमात्मा अपने अनन्त ज्ञान, बल आदि गुणों से सहित होने से सगुण और रूपादि जड़ के तथा द्वेषादि जीव के गुणों से पृथक् होने से निर्गुण कहलाता है । स्वामी दयानन्द की इस विचारधारा की पुष्टि वेदमंत्रों द्वारा होती है । वेदों में सगुण व निर्गुण दोनों रूपों में

ईश्वर का वर्णन किया गया है। ऋग्वेद में कहा गया है कि वह परमात्मा पर्वतों के गहरे अंचल में और नदियों के संगम में अपने ज्ञान रूप से विद्यमान है। आशय यह है कि वह सर्वत्र व्यापक है। इसी प्रकार उसके सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, अनन्त, अजर, अमर आदि गुणों का वेदों में प्रतिपादन किया गया है, जैसा कि हमने अध्याय के प्रारम्भ में दर्शाया है।

इस प्रकार स्वामी दयानन्द को वेदान्तियों की यह धारणा मान्य नहीं है कि ब्रह्म में कोई गुण नहीं है और न ही सगुण और निर्गुण ब्रह्म के दो रूप ही वेदों में वर्णित हैं। अपितु स्वामी दयानन्द की मान्यता है कि निर्गुणता और सगुणता दोनों एक ही सत्ता में एक साथ रहने वाले गुण है। उन्होंने आदिशंकराचार्य की भाँति निर्गुणता से समस्त गुण रहित और सगुणता से अनन्त गुण सहित अभिप्राय को स्वीकार नहीं किया है दूसरे आदिशंकराचार्य जिस प्रकार की निर्गुण ब्रह्म की विचारधारा प्रस्तुत करते हैं, वह तो चिन्तनातीत है, जिसके विषय में कुछ कहा ही नहीं जा सकता। इसके साथ ही वेदों में ईश्वर के अनन्त गुणों का वर्णन है तथा कहीं पर भी -पर' और 'अपर' यह दो भेद एक ही ईश्वर के विषय में नहीं है। अतः स्वामी दयानन्द की धारणा ही मान्य है।

दयानन्द के अनुसार उपनिषदों के ब्रह्म निरूपण का आधार वेद–

बहुधा आधुनिक विद्वानों ने यह विचार व्यक्त किए हैं कि ब्रह्म निरुपण का आदि स्रोत उपनिषद् ग्रंथ है तथा वेदों में ब्रह्मविद्या का सर्वथा अभाव है। इस विषय में हमने यह पूर्व ही सिद्ध कर दिया है कि वेदों में ब्रह्म विद्या को स्वयं उपनिषद् भी स्वीकार करते हैं। अतः इस विषय में यह अवलोकन करना भी महत्वपूर्ण होगा कि उपनिषदों में ब्रह्म के स्वरूप का जो प्रतिपादन हुआ है, उसके आधार पर क्या कृत्रिम दूरी समाप्त हो जायेगी। इस विषय में सर्वप्रथम यह देखना महत्वपूर्ण

है कि क्या उपनिषदों में ब्रह्म और जीव को अद्वैत स्वीकार किया है?

इसमें स्वामी दयानन्द का मत है कि उपनिषदों में ब्रह्म को जीव से पृथक् माना गया है। आपके अनुसार ये ग्रंथ जीव को भी ब्रह्म के साथ अनादि मानते हैं। उपनिषदों में ब्रह्म व जीव के भेद का कथन करने वाली श्रुतियाँ, अनेक स्थलों पर मिलती हैं। उपनिषदों में अनेक मंत्रों द्वारा जीव-ब्रह्म भेद को दर्शाया गया है यथा मुण्डकोपनिषद् में कहा है कि 'एक ही (प्रकृति रूपी) वृक्ष पर जीवात्मा व परमात्मा दो पक्षी बैठे हैं, जिनमें से एक उस वृक्ष के फलों को खाता है अर्थात् जीवात्मा प्रकृति के भोगों को भोगता और दूसरा परमात्मा प्रकृति के फलों को न खाता हुआ साक्षी रूप से देख रहा है।' इस प्रकार यह तो स्पष्ट है कि उपनिषदों में जीव और ब्रह्म के द्वैत को स्वीकार किया है किन्तु उपनिषदों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म निरूपण करना है। अतः उपनिषदों में ब्रह्म-विद्या ही मुख्यतः है। ?

उपनिषदें स्वयं ही ब्रह्म-विद्या के लिए वेदों को प्रमाण रूप में स्वीकार करती है जैसे कि ब्राह्मण वेद के स्वाध्याय द्वारा उसी परमात्मा को ही जानने की इच्छा करते हैं। उसके अतिरिक्त ईशोपनिषद् जो अन्य सब उपनिषदों का आधार है यजुर्वेद का 40वाँ अध्याय तथा अन्य उपनिषदों में भी अनेक स्थानों पर वेदमंत्रों को प्रमाण के रूप में उल्लिखित किया गया है। जैसे –**'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्व जाते।'** यह ऋग्वेद का मंत्र है जो कि मुण्डकोपनिषद् और श्वेताश्वतर उपनिषद् में भी है।

इसी प्रकार यजुर्वेद का मंत्र **'तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।'** श्वेताश्वतरोपनिषद् में उद्धृत है। इसी प्रकार श्वेताश्वरोपनिषद् में ऋग्वेद के मंत्र **'ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन देवा अधि विश्वे निषेदुः'** प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार यहाँ वेद मंत्र संहिताओं और उपनिषद् ग्रंथों का गम्भीर अवलोकन करने से यह

स्पष्ट हो जाता है कि उपनिषदों के ब्रह्म निरूपण का आधार वेद संहितायें हैं, वहीं यह भ्रान्ति भी दूर हो जाती है कि इन दोनों में दो भिन्न-भिन्न विद्याओं का प्रतिपादन किया गया है। यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सारे भारतीय दार्शनिक विचारों का आदि मूल वेद ही है।

आलोचना – वेदों में ब्रह्म विद्या के विषय में विभिन्न मतों का अवलोकन करके यह स्पष्ट हो गया है कि अनेक पश्चिमी एवं भारतीय वेदज्ञों ने जो यह धारणा प्रचलित की, कि वेदमंत्र मात्र कर्मकाण्डपरक ग्रंथ हैं तथा उनकी उपयोगिता केवलमात्र यज्ञादि का अनुष्ठान करना ही है। इससे कई प्रश्न अनायास ही उपस्थित हो जाते हैं। वस्तुतः गिन्नी बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्डस के अनुसार वेद संसार के पुस्तकालय में प्राचीनतम एवं श्रेष्ठतम ग्रंथ हैं।

वस्तुतः कि मानव चिन्तन में सर्वप्रथम जो विचार उपजा, वह उक्त विचारों के अनुसार 'यज्ञ' का विचार था। 'यज्ञ' से तात्पर्य सामान्य विचारक अग्निहोत्र से लगाते हैं जो कि किसी न किसी कार्य को सिद्धि के लिए किया जाता है किन्तु यज्ञ शब्द को ही यदि गम्भीरता से देखें तो पता चलता है कि वास्तव में समस्त दार्शनिक चिन्तन का मूल इसी से मुखरित होता हैं सर्वप्रथम सायणाचार्य की दृष्टि में 'यज्ञ' शब्द का क्या अभिप्राय है, यह देखना महत्वपूर्ण होगा। सायणाचार्य ने यज्ञ का ब्रह्म अर्थ किया। वेदों की उत्पत्ति के विषय में सायणाचार्य लिखते हैं कि उस यज्ञ अर्थात् ईश्वर से ही वेद उत्पन्न हुए। इस प्रकार यज्ञ का अर्थ मात्र कर्मकाण्ड मान लेना भी भारी भूल रही है। शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ का अर्थ सर्वव्यापक ईश्वर किया है।

इस प्रकार से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि मंत्र संहिताओं में जो शब्द आये उनको ब्राह्मण ग्रंथों के रचयिता ऋषियों ने जन ग्राह्य बनाने के उद्देश्य से प्रतीकात्मक शैली में निरुपित किया जो कि अध्यात्मवेता ऋषियों ने अपने गम्भीर चिन्तन के आधार पर अनेक शाखाओं के रूप

में प्रकाशित किया। उपनिषद् और भारतीय षटदर्शन उसी चिन्तनधारा के अंग है। किन्तु मध्यकालीन वेद भाष्यकारों ने वेदों के इस मर्म को न समझ कर अपनी-अपनी बुद्धि द्वारा नवीन-नवीन धारणाओं का प्रचार करना प्रारम्भ किया जिसके परिणामस्वरूप वेदसंहिताओं, उपनिषदों तथा षट्दर्शनों में पारस्परिक मतभेद प्रतीत होने लगा।

स्वामी दयानन्द ने वेदों के विषय में अपनी धारणा स्थापित करने के लिए इन समस्त मध्यकालीन भारतीय एवं पश्चिमी विचारकों को छोड़कर उनके विषय में प्राचीन ऋषियों की विचारधारा को अपनाया जो कि वेदों के विषय में सबसे अधिक मान्य हैं। अतः यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि वेदों में ब्रह्म-विद्या अथवा दार्शनिक तत्वों का अभाव है। हमने इसका सप्रमाण उल्लेख किया है कि स्वामी दयानन्द द्वारा मान्य इस धारणा का कि ब्रह्म-विद्या ही वेदों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है, पूर्णतः तर्क-संगत एवं वैदिक परम्परा के ऋषियों द्वारा प्रतिपादित धारणा है।

वेदों में ब्रह्म के स्वरूप के सम्बन्ध में अनेक मतों का निरीक्षण करने पर उनमें सबसे अधिक त्रुटिपूर्ण विचार वेदों में देवता शब्द का अर्थ सर्वथा ईश्वर करने से उत्पन्न हुए। जिसके कारण यह विचारधारा विकसित हुई कि वेदों में अनेक ईश्वर की धारणा उपस्थित है तथा प्रकृतिस्थ शक्तियों की भी उपासना का विधान वेदों में है। उक्त धारणा से यह मत प्रचलित हुआ कि वेदों में ब्रह्म-विद्या का स्पष्ट निरुपण न होने से वे दार्शनिक तत्त्वों से शून्य है। हमने इन तथ्यों की भी विस्तार से विवेचना करते हुए यह स्पष्ट किया कि वेदों में वास्तव में एक ही ईश्वर को उपास्य माना गया है तथा उसी एक ईश्वर के अनेक नाम हैं।

इस प्रकार दयानन्द हमें वेद की मूल भावना एकेश्वरवाद को

समझाने के लिए यह स्पष्ट बता देते हैं कि वेद में एक ही ईश्वर को 'अग्नि, वायु, आदित्य अनेक नामों से जाना जाता है।' वेद स्वयं स्वामी दयानन्द के कथन की पुष्टि करते हैं यथा यजुर्वेद में कहा कि वही (ज्ञान स्वरूप होने से) अग्नि है, (सबके ग्रहण करने से) वही आदित्य है (अनन्त बलवान् होने से) वही वायु है, (महान् होने से) वही ब्रह्म है (सर्वत्र व्यापक होने से) वही प्रजापति भी है। इसी प्रकार वेद में दो, तीन, चार, पाँच अर्थात् एक से अधिक ब्रह्म होने का निषेध किया और एक ही ब्रह्म का निरूपण किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामी दयानन्द ने वेदों की व्याख्या की प्राचीन ऋषियों की प्रणाली में ऋषियों द्वारा की गई वेदों की व्याख्या के आधार पर अपना भाष्य करके यह सिद्ध किया कि वेद एकेश्वरवाद का ही प्रतिपादन करते हैं।

किन्तु स्वामी दयानन्द के इस मत पर कुछ पश्चिमी विद्वान् तथा उनकी विचारधारा को स्वीकार करने वाले भारतीय विद्वान् भी अपने टिप्पणी करते हुए उनके भाष्य को अवैज्ञानिक बतलाते हैं। जैसा कि ग्रीन्सबोल्ड ने कहा कि 'स्वामी दयानन्द की इस प्रकार की वेदों की व्याख्या जंगली एवं अवैज्ञानिक है।' ग्रीन्सवोल्ड और उनके समर्थक विद्वानों ने वेदों की शब्दावली को न समझकर अपना मत व्यक्त किया है क्योंकि ब्राह्मण ग्रंथों, उपनिषदों, निरुक्त आदि वैदिक शब्दावली के प्रकाशक ग्रंथों को अपना आधार बनाकर स्वामी दयानन्द ने अपना वेद भाष्य किया है। यदि स्वामी दयानन्द की व्याख्या अवैज्ञानिक व जंगली माने तो इन ग्रंथों को भी अवैज्ञानिक व जंगली मानना पड़ेगा। इस प्रकार से तो समस्त वैदिक साहित्य ही इस कोटि में आ जायेगा। अतः स्वामी दयानन्द की व्याख्या पूर्णतः वैज्ञानिक है तथा ऐसा कहना कि उनकी वेदों की व्याख्या जंगली है स्वयं ग्रीन्सवोल्ड सरीखे विद्वानों के अज्ञान का परिचायक है।

इस विषय में श्री अरविन्द का मत भी स्वामी दयानन्द की व्याख्या शैली का समर्थन करने में महत्वपूर्ण है। वे ग्रीन्सवोल्ड जैसे

विद्वानों के लिए लिखते हैं 'बिल्कुल नहीं, यह तो स्वयं वेद का कहना है कि एक ही को विद्वान् ध्यान रखो मूर्ख नहीं– कई प्रकार से कहते हैं, कभी इन्द्र, कभी यम, कभी मातरिश्वा और कभी अग्नि।' इसके विपरीत पश्चिमी विद्वानों ने इन स्पष्ट एकेश्वरवाद के प्रतिपादक मंत्रों से बचने के लिए यह कह दिया कि इस प्रकार के मंत्र जिनमें एकेश्वरवाद के दर्शन होते हैं, बाद के बनाये हुए हैं। इस विषय में श्री अरविन्द के शब्दों में डॉ० वेदप्रकाश गुप्त का कथन उपयुक्त है जो कि उन्होंने इस प्रकार के विचारकों के लिए उक्त कथन के उत्तर में दिया कि 'इतना ऊँचा विचार (एकेश्वरवाद का विचार) जो कि अत्यन्त स्पष्ट है या तो किसी तरह से बाद के आर्यों के मस्तिष्क में उत्पन्न हुआ होगा अथवा उन अज्ञानी, अग्नि पूजक, सूर्य पूजक, आकाश पूजक, आर्यों ने इस देश के मूल निवासी तथा अपने से पूर्व बसने वाले सुसंस्कृत दार्शनिक प्रतिभायुक्त द्रविड़ों से लिया होगा। पाश्चात्य विद्वानों की यह कल्पना बड़ी धृष्टतापूर्ण है। उन्हें वेद के सम्बन्ध में साधारण ज्ञान भी न था। वेद के अध्ययन में इनका मुख्य तात्पर्य वेदों की प्रतिष्ठा को गिराना मात्र था, जिसे वे हर कीमत पर करने को तैयार थे।

अतः वेदों में दार्शनिक तत्वों का वर्णन किया गया है तथा इन्हीं से उपनिषदों और भारतीय षटदर्शनों की दार्शनिक विचारधारा निकली है। इसलिए स्वामी दयानन्द की यह धारण कि सारे भारतीय वैदिक दार्शनिक विचारों का मूल वेद ही है, पूर्णतः सत्य है।

II. ईश्वर और बाइबल

बाइबल के अध्ययन से प्रतीत होता है कि ईश्वर की सर्वव्यापकता एवं अस्तित्व का परिचय इसके आरम्भ में ही मिलता है। जरा देखिए–

1. **परमेश्वर ने आरम्भ में आकाश और पृथ्वी को रचा। पृथ्वी आकार रहित और सुनसान थी। महासागर के ऊपर अंधकार था। जल की सतह पर परमेश्वर का आत्मा मंडराता था।** (उत्पत्ति पृ० 1)
2. **परमेश्वर समस्त पृथ्वी का सम्राट है,**
   विशेष गीतों के साथ स्तुति गाओ।
   परमेश्वर समस्त राज्यों पर राज्य करता है।
   परमेश्वर अपने पवित्र सिंहासन पर विराजमान है।
   (भजन संहिता पृ० 48)
3. **God is love, and he that dewelled in love and develled in God. God in him. (– New Testament)**

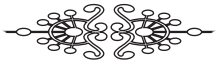

III. ईश्वर और क़ुरान

क़ुरान के अध्ययन से भी प्रतीत होता है कि इसका श्रीगणेश भी ख़ुदा की सर्वव्यापकता व अस्तित्व से शुरू हुआ। जैसे –

1. **शुरू ख़ुदा का नाम लेकर जो बड़ा मेहरबान, निहायत रहम करने वाला है। सब तारीफ़ ख़ुदा ही को सज़गवार है जो तमाम मख़लूक़ात का परवरदिगार है।** –पारा 1, (रूकु 1 आयत 1)
2. **ख़ुदा के सिवाय कोई इबादत के लायक नहीं। वही अर्शे अज़ीज़ का मालिक है।** –पारा 19, (रूकु 2 आयत 25)

IV. ईश्वर और श्री गुरुग्रंथसाहिब

श्रीगुरुग्रंथसाहिब का श्रीगणेश भी परमात्मा से होता। जरा देखिए–

१ ओ ‿ सतिनामु (पृ० 1)

प्रस्तुत शब्द श्रीगुरुग्रंथसाहिब का सर्वप्रथम शब्द है। इसमें बताया गया है कि परमात्मा एक है। वह एकमेव अद्वितीय है। सारा श्रीगुरुग्रंथ साहिब इसकी व्याख्या है।

इसी प्रकार परमात्मा की सर्वव्यापकता और अस्तित्व के विषय गुरुनानक देव जी लिखते हैं–

एको सिमरो नानका जल थल रिहा समाई।
दूजो काहों सिमरि जमे ते मर जाई।। –श्री गुरुग्रंथ साहिब

न्यूटन ने भी लिखा है–

All this material universe is the hand work of one omniscient and omnipotent creater. –Princepie

इस प्रकार हम देखते हैं कि तैतिरोपनिषद् में एक कथा आती है कि एक बार ऋषि वरुण का पुत्र भृगु अपने पिता से कहने लगा। कृपया मुझे ब्रह्म का उपदेश दीजिए। इस प्रकार वरुण ने अपने पुत्र भृगु को आदेश दिया कि पहले एक वर्ष तक तप करो फिर मेरे पास उपदेश लेने के लिए आओ। भृगु ने एक वर्ष तक तप किया और जाना कि अन्न ही ब्रह्म है क्योंकि अन्न से ही सब भूत उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होने के पश्चात् अन्न में ही जीवित रहते हैं और उसमें ही विलीन हो जाते हैं। वह फिर अपने पिता वरुण के पास गया और कहा कि अन्न ही ब्रह्म है। इस प्रकार वरुण ने फिर आदेश दिया कि एक वर्ष फिर तप करो। एक वर्ष तप करने के पश्चात् भृगु फिर अपने पिता के पास गया और कहा कि पिताजी प्राण ही ब्रह्म है। क्योंकि प्राण से ही सब भूत उत्पन्न होते हैं और फिर प्राण में ही विलीन हो जाते हैं। पिता ने पुत्र

को फिर आदेश दिया कि प्राण ब्रह्म नहीं है । अतः फिर एक वर्ष तप करो ।

भृगु ने फिर तप किया और जाना कि मन ही ब्रह्म है । क्योंकि मन से ही सब भूत उत्पन्न होते हैं । इसके बाद मन से ही जीवित रहते और उसी में विलीन हो जाते हैं । फिर वह अपने पिता के पास गया और कहा मन ही ब्रह्म है । परन्तु पिता ने उसे उत्तर दिया कि मन ब्रह्मा नहीं है । अतः फिर तप करो । उसने एक बार फिर तप किया और जाना कि आत्मा ही ब्रह्म है क्योंकि उससे ही सब भूत आत्मा उत्पन्न होता है । उसी में जीवित रहते हैं और अन्ततः उसी में विलीन हो जाते हैं । वरुण ने भृगु को उपदेश देते हुए कहा कि आत्मा ब्रह्म नहीं है । अतः एक वर्ष का और तप करो । भृगु ने एक वर्ष फिर तप किया और जाना कि आनन्द ही ब्रह्म है । इस के पश्चात् वह फिर अपने पिता के पास गया और कहा कि पिता जी आनन्द ही ब्रह्म है । तब पिता ने कहा अब आपका उत्तर ठीक है । क्योंकि आनन्द, ब्रह्म अथवा परमात्मा का पर्यायवाची है ।

इसके विषय में एक कविता सुनिए–

प्रभु प्यारे से जिसका संबंध है,
उसे हर पल आनंद ही आनंद है ।
झूठी ममता से करके किनारा लेके सच्चे प्रभु का सहारा,
जो उसकी रजा में रजामंद है, उसे हर पल ..... ।।1।।
जिसकी करनी में फूलों सी महक है ।
जिसकी करनी में कोयल सी चहक है ।
प्रेम नगरी में जिसकी सुगंध है उसे हर पल ..... ।।2।।
चुगली निन्दरा न जिसको सुहावे,
बुरी संगत की रंगत न भावे ।
सत्संग ही जिसको पसंद है, उसे हर पल ..... ।।3।।

दीन दुःखियों के दुःख जो मिटा दे ।

बन के सेवक भला सबका करे ।

नहिं जिसमें घमण्ड और पाखण्ड है उसे हर पल ।। 4 ।।

वस्तुतः मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे और गिरजे सब ही उस परमात्मा को याद करने के स्थान हैं । उनमें घंटे और शंख का बजाना अध्यात्म का राग है । मस्ज़िद में महराब के सामने नमाज, गिरजे में माला और ईसाइयों का क्रॉस का निशान सब उस परमात्मा की इबादत के अलग-अलग चिह्न हैं । जैसे दाग़ देहलवी ने लिखा है–

ज़ाहिद शराब पीने दे मस्जिद में बैठकर

या वो जगह बतादे जहाँ पर ख़ुदा न हो ।

शायर ने इसका उत्तर इस प्रकार दिया–

ऐ रीन्द ! पी शराब तू जहाँ चाहे बेधड़क ।

अगर दिल में ख़ुदा नहीं तो कहीं भी ख़ुदा नहीं ।। –दाग़ देहलवी

क़ुरानशरीफ में ही हज़रत मुहम्मद साहिब फर्माते हैं–

अल्लाह ही की मल्कियत है मशरिक (पूर्व) में चाहे मग़रिब (पश्चिम) में जिस तरफ भी तुम रूख करो, उधर ही अल्लाह का रूख है क्योंकि वह अल्लाह ताला हर जगह व हमाँ-दाँ (सर्वज्ञ) है ।

हम देखते हैं ईश्वर के नियम अटूट एवं अविचलित हैं । जिसकी अद्‌भुत व्यवस्था आश्चर्यचकित कर देती है जिसका न्याय अपूर्व व अक्षुण्ण है, सम्पूर्ण ज्ञान के भण्डार उसके विश्वासयंत्र है । अनंतकाल से संसार में प्रकाश का प्रसार करने वाले सूर्य व चाँद उसकी अनुपम लीला के निमेषमात्र है । इसलिए परमात्मा की सर्वव्यापकता के विषय में एक उर्दू शायर ने लिखा है–

हर इक वर्ग क़ायल है अज़मत (बड़पन) का तेरी ।

हर इक गुल में तुझको खिला देखते हैं ।।

चमकता सितारों में है नूर तेरा ।

महो-खुर (चांद-सूरज) में तेरी ज़िया (चमक) देखते हैं ।।

संसार के विभिन्न 40 वैज्ञानिकों ने – ''The Evidence of God in Expanding Universal'' नामक पुस्तक में स्वीकार किया है कि प्रभु की सत्ता और इसके समूचे जगत् के उत्पादक, रक्षक और विनाशक एक प्रभु ही हैं । इसी प्रकार ''Seven Man of Science'' नामक पुस्तक में लिखा है कोई शक्ति है जो पीछे छिपी हुई गति दे रही है ।

तू अपनी आँखें उज्ज्वल कर । फूल की पंखुड़ी में देख । घास की पत्ती में देख । अणु-अणु में, परमाणु-परमाणु में उसको देख । अपनी खुली आँखों से उसकी शक्तियां देख । उसकी कारीगरी देख । हिमाच्छादित पर्वतों की चोटियों पर खेलते हुए सूर्य की रश्मियों को देख । कल-कल करते सागर की लहरों को देख । यह समग्र अद्वितीय सौंदर्य उसने तेरे लिए ही बनाया है ।

उषा में किसकी छवि मुस्करा रही है? श्यामल मेघों में कैसा स्निग्ध केशपाश लहरा रहा है । मंद-मंद बहते मलयानिल में किसका सौरभ भरा उच्छवास है? रवि शशि किसके गोल कुण्डल हैं? पृथ्वी किसका पांव है? अंतरिक्ष किसका उदर है? द्युलोक किसका विशाल भाल है । इन सबको देखकर मानव आश्चर्यचकित रह जाता है ।

पुष्पों की पंखुड़ियों में, पक्षियों के पैरों में, मेघों में, इन्द्रधनुष में, प्रभात की उषा आदि में कौन चित्रकार अपनी तूलिका से तरह-तरह के रंग भर रहा है । पवन के झकोरों में, पक्षियों के कलरव में, बादलों की गर्जन में, झरनों की झर-झर में, नदियों के कल-कल नाद में, कौन चतुर गवैया अपनी संगीत की सुरीली तान सुनाकर मानव को मंत्रमुग्ध कर रहा है?

सुधा भरे पुष्पों के प्याले में, प्रभात के मंद पवन में, अलसाये मेघों में मस्तानी चाल में, वायु में उद्वेलित पल्लवों के नृत्यों में काले बादलों की ओर से उगते चांद की मुस्कान में, अलसायी आँखों को चूमती रवि-रश्मियों के चुम्बन में, पर्वतों के गले मिलती सरिताओं के भुजबंधन में, पेड़ों से लिपटती लताओं के आलिंगन में, किसके हृदय का अमिट प्रेम उमड़ रहा है? ये सब बातें परमात्मा की सर्वव्यापकता अस्तित्व व सिद्धि की ओर ही तो संकेत करती है ।

अतः जयदयाल गोयन्दका जी लिखते हैं–

निराकार और साकार किसी भी रूप का ध्यान करने पर जो एक ही परम वस्तु उपलब्ध होती है, उस परमेश्वर की सब प्रकार से शरण होकर इन्द्रिय और शरीर से उसकी सेवा करना, मन में उसे स्मरण करना, श्वास से उसका नामोच्चारण करना, कानों से उसका गुण-प्रभाव सुनना और शरीर से उसकी इच्छानुसार चलना यही उसकी सेवा है, यही असली भक्ति है और इससे आत्मा का शीघ्र कल्याण हो सकता है ।

–ज्ञानयोग का तत्त्व (भगवान् क्या है? पृ० 188)

अन्ततः उपर्युक्त विवेचन-विश्लेषण से हम इस निष्कर्ष व निचोड़ पर पहुँचते हैं कि ईश्वर का अस्तित्व है चाहे हम अपनी श्रद्धानुसार किसी भी नाम से पुकारें । वस्तुतः संसार का प्रत्येक व्यक्ति आनन्द चाहता है और आनन्द ही परमात्मा का पर्यायवाची शब्द है । चाहे कोई आनन्द कहे या परमात्मा । दोनों शब्दों का एक ही अर्थ है इसके अतिरिक्त प्रकृति के उपर्युक्त अद्‌भुत दृश्यों के विवेचन से प्रतीत होता है कि संसार में ईश्वर का अस्तित्व है क्योंकि इन दृश्यों को कोई व्यक्ति नहीं बना सकता है । अतः ईश्वर सिद्धि स्वतः हो जाती है । जैसे आचार्य श्रीराम लिखते हैं –

वेद ने भी ईश्वर, जीव और प्रकृति को अनादि स्वीकार किया है ।

इसी प्रकार एक उर्दूशायर ने कितना सुन्दर लिखा है–

हर गुल (फूल) में हर शजर (वृक्ष) में
हर शै में हर बशर (व्यक्ति) में ।
ग़र तू न देखे उसको, तो है कसूर तेरा ।।

निष्कर्ष–

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्.....

सूर्य, चन्द्र, तारे, विद्युत् आदि कोई तत्त्व उस प्रभु को प्रकाशित नहीं कर सकते, प्रत्युत उसकी सत्ता से ये सब प्रकाशित होते हैं । यदि वह जगत् का रचयिता न हो, तो यह सब विश्व अपनी इस सत्ता को दृष्टिगोचर नहीं हो सकता । इसलिए ब्रह्मा का ऐश्वर्य केवल विकार में सीमित न होकर समस्त कार्य एवं कारण विश्व के ऊपर है । यदि ब्रह्म का ऐश्वर्य विकारवर्ति होता, तो जगत् की रचना कैसे होती? इसका निर्माता फिर कौन होता? उस दशा में जगत् की रचना असंभव होती । जो सत्य, चेतन, अनन्त, प्रभु को जान लेता है, वह आनन्दरूप ब्रह्म के साथ सब कामों को भोगता है । आत्मा की शुद्धि होने पर परमात्मा के दर्शन आत्मा में ही होते हैं । उसको पाने के लिए धारणा, ध्यान और समाधि की आवश्यकता है । पत्थर की मूर्ति पूजा से कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता, क्योंकि वह जड़ है ।

लेखक द्वारा प्रकाशित एवं निःशुल्क वितरित पुस्तकों की सूची :–

1. रामचरितमानससार
2. गीतासार
3. उपनिषद्सार
4. सत्यार्थप्रकाशसार
5. भक्ति
6. सुखीजीवन
7. आत्मबोध
8. वेदवाणी
9. वैदिकसाहित्य
10. अमृतवाणी
11. महर्षि दयानंद
12. स्वामी विवेकानंद
13. शरणागति
14. वैदिक रामायण
15. क्या आप जानते हैं ?
16. शेर-ओ-शायरी

लेखक द्वारा अप्रकाशित पुस्तकों की सूची :–

1. वैदिक उपनिषद्वाणी
2. वैदिक दर्शनवाणी
3. वैदिक महाभारत
4. वैदिक गीता
5. अमर धर्मग्रंथ
6. अमर नीतिग्रंथ
7. पुराणपरिचय
8. ईश्वरसिद्धि
9. राष्ट्रभाषा हिन्दी
10. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
11. महावीर हनुमान
12. योगिराज श्रीकृष्ण
13. आदिशंकराचार्य
14. आचार्य चाणक्य
15. दस गुरु
16. आर्यसमाज के महामानव
17. स्वामी रामतीर्थ
18. संस्कार
19. गीतांजलि
20. आर्यसमाज
21. ओ३म्
22. गायत्रीरहस्य
23. ज्ञानामृत
24. यज्ञ
25. संत
26. संतवाणी
27. सामान्य हिन्दी (भाग I-II)
    (सब कक्षाओं के लिये)
28. **Great Thoughts**
29. **General English (Part I to V)**
    (For All Classes)